बदरी नारायण सिनहा
(परिचय-तालिका)

* पटना विश्वविद्यलय के अग्रणी, मैट्रिक से एम० ए० तक ।

** पटना विश्वविद्यलय के भूतपूर्व अंग्रेजी प्राध्यापक ।

*** सन १९५२ ई० से इंडियन पुलिस सर्विस के सदस्य, आज वरीय अधिकारी ।

**** सर्वथा मौलिक साहित्य ज्ञान-ग्रन्थ ''प्राथमिकी'' के प्रणेता ।

***** सर्वथा अभिनव कथा-कृति ''मैना के उलझ गये डैना'' के रचयिता ।

****** ''माध्यमिकी'' एवं ''आज तक की'' के अनुसंधान मनन-जन्य चिंतन के व्याख्याता ।

******* भारतीय संस्कृति, इतिहास, दर्शन के मर्मज्ञ ।

******** ''झाँकियाँ'' उपन्यास के रचनाकार

********* ''टटका आदम'' के मौलिक विधाकार ।

---o0o---

बदरी नारायण सिनहा

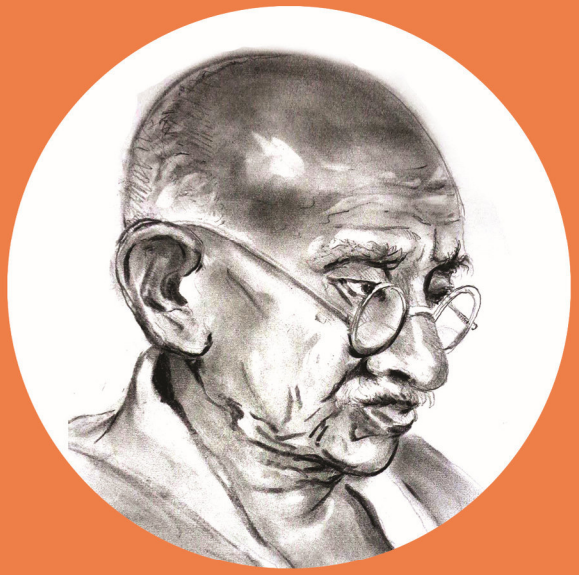

अब बहु से सब जन हिताय

काव्य
मोहनदास करमचंद गांधी

अब बहु से सब जन हिताय

काव्य

(मोहनदास करमचंद गाँधी)

●

रचयिता

बदरी नारायण सिनहा

प्रकाशक

नवभारत प्रकाशन

दिल्ली-६ : पटना-४

प्रकाशक
नवभारत प्रकाशन
६०५२, सदर बाजार, दिल्ली-६
खजांची रोड, पटना-४

•

आवरण शिल्पी
वीरेश्वर भट्टाचार्य

•

लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

•

प्रथम संस्करण २,०००
जून, १९६६

•

मूल्य : ३·००

•

मुद्रक
श्री एन० जी० सहगल,
यू० पी० प्रिंटिंग प्रेस,
४२, एडमॉन्स्टन रोड,
इलाहाबाद

सूची

विषय			पृष्ठ
मूलमंत्र	.....	.....	१
प्राक्कथन	.....	.....	३
आधार	.....	.....	५
वंदना	.....	.....	७
प्रथम आलोक	.....	.....	९
द्वितीय आलोक	.....	.....	३२
तृतीय आलोक	.....	.....	४७
चतुर्थ आलोक	.....	.....	६५
पंचम आलोक	.....	.....	८३
षष्ठ आलोक	.....	.....	१०१
सप्तम आलोक	.....	.....	११७
पुस्तक-विवरण	.....	.....	१२९
उद्धरणी	.....	.....	१३१
बापू के वचनामृत :	.....	.....	१३८
टिप्पणियाँ	.....	.....	१४५
व्याख्या : इस काव्य की	.....	.....	१५३
व्याख्या : महाकाव्य की	.....	.....	१५७
काव्य की नामावली	.....	.....	१५९
आभार	.....	.....	१६२

अब बहु से सब जन हिताय

काव्य

(मोहनदास करमचंद गाँधी)

मूलमंत्र

ॐ

फूटे सलिल इस धरा से।
छूटे गान बे-सुरा से ॥

पीयूष धार बहती,
सब कर लें अवगाहन;
हम में, तुम में, जन में
तनिक नहीं अवगुंठन ॥
लोक नीति एक रीति,
नहीं गाँठ या बंधन;
तन श्रम से हो अर्जन,
मन में पर-हित याचन ॥

प्राक्कथन

आलोचक कठोर और विभोर दोनों होता है। कभी-कभी आलोचक को खर, भिस्ती, बावर्ची भी होना पड़ता है। खर, जब वह कोरी आलोचना करता है, अर्थात् दूसरों का भार ढोता है; भिस्ती, जब वह सम्पादन करता है, अर्थात् नये पौधों का सिंचन करता है; बावर्ची, जब वह खुद मौलिक रचनाएँ करता है।

या समर्थ आलोचक साहित्य की बागडोर ले लेता है जब वह अपेक्षित रचनाओं की खोज और प्रतीक्षा में अधीर हो उठता है।

मैं सिर्फ खर, भिस्ती, बावर्ची ही बन गया हूँ। इलियट, जॉनसन की सामर्थ्य रहती तो दूसरी सूक्ति फबती।

यह युग-गाथा है। आइंस्टीन ने गाँधी की शहादत पर कहा था कि हजार वर्षों बाद कोई यकीन भी नहीं करेगा कि ऐसा पुरुष कभी इस पृथ्वी पर विराजित था। हजार दिनों, सप्ताहों के बाद ही ऐसी धारणा होने लगी। संस्कृत के नौ रसों के

रस उतारने की क्षमता रखने वाला कवि ही इस गाथा में स्पंदन भर सकता था या हिन्दी में ऐसा कवि जो एक साथ ही अपने में गुप्त की भारतीयता, माखनलाल की आत्मीयता, प्रसाद, पंत की दार्शनिकता, सुकुमारिता भी, नवीन, सुभद्रा, दिनकर की ओजस्विता, निराला की प्रतिरचनागत अभिनवता, अज्ञेय की प्रयोगात्मकता, वर्तमान कवियों की वक्रता आत्मसात कर पाता, तो भी यह युग-गाथा, बहुत दृष्टियों से विगत गाथाओं से अधिक रोमांचकारिणी एवं अग्रणी, पूर्णतः ध्वनित हो उठती।

मेरे चिन्तन एवं अन्वेषण में गांधी की स्व-अर्जित ज्ञान-उपलब्धियाँ विशिष्ट हैं। इनके दर्शन भी हुए थे, इनकी किंवदंती इनके जीवनकाल में ही फैल गई थी, इसलिए, इस गाथा को बेतुका, बे-सुरा रहने पर भी मैंने छंदों में कहा है। जब तक कोई उपर्युक्त गुणोंवाला कवि इस गाथा को मूर्तिमान नहीं कर लेता, तबतक मेरी तुकबंदियों को सह लें, इतनी ही मेरी प्रार्थना है। ये तुकबंदियाँ तुहिन-कण हैं, मोती-से रूप में, पर ये जल में, गद्य में, ढह, बह जायेंगी कोरे स्पर्श से, अन्तर्स्पर्श से, क्योंकि गद्य और पद्य में मर्म का कोई अंतर नहीं होता है।

बदरी

भागलपुर
वि० स० २०२२, २ अक्टूबर, १९६५

आधार

इन्द्र-धनुष में ही नहीं अपितु मूलतः सात रंग होते हैं, वस्तुतः वैसे ही जैसे सप्ताह में सात दिन या भूलोक में सात समुद्र।

बापू की जीवनी में सात रंग हैं, सात आलोकस्तम्भ हैं, सात चरमोत्कर्षः स्वतंत्रता का अभ्युदय परन्तु सत्ता का त्याग; सत्याग्रह, रंग, वर्ण, अन्याय, अधर्म, अज्ञान के प्रति सत्याग्रह; अहिंसा का व्यवहार; यौन-वासना पर अधिकार; हरिजनों के उद्धार; राजसत्ता का मानवीकरण; शहादत।

ये उत्कर्ष समुद्र समान गहरे हैं। जितने ही गहन प्रवेश इनके अंतराल में करें, उतने ही रत्न प्राप्त होंगे।

ये सात हिलोरे हैं जो जग और जन को ओतप्रोत करती रही हैं, अभी भी करती रहती हैं, भविष्य में भी करती रहेंगी। बरट्रैंड रसल या आइंस्टीन की प्रतिभाएं ही इस दर्शन, स्थापन में अथवा इस अत्यन्त ही मानवीय कथा की सूक्ष्म रश्मियाँ पहचान सकतीं।

———

वंदना

हे गीत प्रीति के कवि गाओ !

आये हैं अब मनुज धरा पर;
जायेंगे ही भेद मिटाकर ।
हे कुंकुम अक्षत बरसाओ ।
हे गीत प्रीति के कवि गाओ ।।

शंख, नाद, भेरी बजने दो,
जगा जागरण है, जगने दो ।
हे स्वर, लय, गति, ताल मिलाओ ।
हे गीत प्रीति के कवि गाओ ।।

मुनि, चिंतक कवि बड़ कल्याणी,
मंगल आशिष है बरसानी ।
हे सब जन हिताय अब गाओ ।
हे गीत प्रीति के कवि गाओ ।।

तप तप्त अरुण है

राणा प्रताप की गाथा
दूर्वादल धवल कहानी
लौटो अब राजमहल में
हे सफल अथक अभियानी !

प्रथम आलोक

कौन कुटी में जाग रहा
कर प्राणों की अवहेला ?
पशु मादों, खग नीड़ों में
यह है रजनी की वेला ॥१॥

यह कैसी आह कसक है
जो जाग रहा मानव रे;
गहन अमा में तड़प रहा
सोता जब सारा भव रे ॥२॥

कितनी बेचैन घड़ी है ?
उमड़ी कैसी आहें हैं ?
कितना उर विकल करुण है ?
सिसकती कौन चाहें हैं ॥३॥

चमके न नयन में पानी,
नयनों से बहे न जल रे;
इसने जो ली अँगड़ाई,
जागे जग, उधर अनल रे ॥४॥

सुन रे, समीर क्या कहता ?
जन का प्यारा यह रवि है,
आकुल विह्वल इस जग पर,
जिसकी बहु उलझी छवि है ॥५॥

इन आहों में ज्वाला है,
कोई क्या अपनायेगा ?
ज्वाला में जल-जल कर रवि
अति विकल कंठ गायेगा ॥६॥

अब सच हैं रवि के सपने ।
ले लिया तरुण वय तपने ॥

बज उठी प्यास बंशी की,
जग में नव आभा फूटी;
दृग में रंगीन विभा ले
युग की जड़ निद्रा टूटी ॥७॥

अब जन चंचल
वन विह्वल ;
सिहर रहे
तरु के श्यामल

लगते प्रिय सब भव अपने ।
अब सच हैं रवि के सपने ॥ ॥८॥

दुंदुभी घोर रव करती,
घर-घर झंडा अपना है;
सदियों के बाद सभी का
साकार हुआ सपना है ॥९॥

मानव भूखे-सूखे भी
जय जयकर उमड़ रहे हैं;
खद्दर परिधानों से सज
नव सुख में अकड़ रहे हैं ॥१०॥

बंदी-गृह द्वार खुले हैं,
विप्लवी तख्त आरोही;
कवियों के गान सुरीले,
जनता पर्वत आरोही ॥११॥

गलियों गलीच के वासी
महलों में बैठ रहे हैं;
वर्जित व्यूहों कक्षों में
निर्भय हो पैठ रहे हैं ॥१२॥

अपने झंडे के हित ही
बन्दूकें आज सजी हैं;
उल्लास मधुर छाया है
जन-भेरी विपुल बजी हैं ॥१३॥

अब जन-समूह में ढूँढें
यह राजमुकुट पहनायें !
कैसी विडम्बना पर यह ?
जमघट में देख न पायें ॥१४॥

जिसने जंजीरें तोड़ीं,
उसने पहनी जय-माला;
इतिहास यही गाता है,
बस वही बना है आला ॥१५॥

मद में गिरि, कद में बौना
विप्लवी पराक्रमशाली,
उस नेपोलियन नृपति ने
थी नूतन सृष्टि रचा ली ॥१६॥

हर हिटलर जन शासक था
आकांक्षी विश्व-विजय का;
बनकर जन प्रतिनिधि आया
पर कारण बना प्रलय का ॥१७॥

केवल न इन्हीं सदियों में
देखें इतिहास उलट कर,
जिस जिसने की अगुआनी
रख दिया निजत्व पलट कर ॥१८॥

जो नायक आज बने हैं
वैभव-विलास के भोगी;
जनता की जय बोलें पर
जनता मिटती बन रोगी ॥१९॥

थे कब ये विश्व-विजेता ?
ये मद से भरे न नेता !
ये त्यागी जग कल्याणी,
बलि जायें द्वापर-त्रेता ॥२०॥

मंगल न अभी आया है,
यह धरणी रक्त सनी है;
यह खण्डन मंडन लखकर
आकुल आहत जननी है ॥२१॥

चलते खेतों आड़ों पर
टखनी तक क्षीण हुई है;
लखकर नादानी, छाती
फट गयी, विदीर्ण हुई है ॥२२॥

जलता न दीप कुटियों में,
या सुलभ न अन्न-वसन है;
खुद नाथ अनाथ न बनता,
जब तक अवशेष दमन है ।।२३।।

अनुजों की खूनी खंजर
जब तलक न भोंदी होगी;
या धर्म-कर्म की गलती
अनुभव करते हैं भोगी ।।२४।।

तब तलक मुकुट पहनेगा
ऐसा यह क्लेश सहेगा ?
उर में अशान्ति यह लेकर
कैसे दो मुहां बनेगा ? ।।२५।।

यह नूतन चिर बल संबल,
यह तो अजीब गाथा है;
उत्तर प्रहार प्रत्युत्तर
नमता न कहीं माथा है ॥२६॥

इतिहास कहाँ है साक्षी
अनुनय से परम विजय का ?
रण या गृह या राज्यों के
विघटन औ अस्त-उदय का ॥२७॥

कर में न तनी बंदूकें,
बस निरी अलप लकुटी रे!
करते आह्वान मरण का
पर नहीं तनी भृकुटी रे॥२८॥

चाहे विरोध हो तगड़ा,
लेकिन अनुरोध न टूटे;
बम या बारूद भले हों,
प्रतिशोध न मन से फूटे ॥२९॥

अधिकार न अपना छोड़ें,
दृढ़ हो जंजीरें तोड़ें;
विश्वास विपुल संबल ले,
ये सत् संकल्प न छोड़ें ॥३०॥

कानून अवैध बतायें,
हँसते कारा को जावें;
यदि बाधा रोड़े आवें,
अति धीर-वीर हो धावें ॥३१॥

चाणक्य-अनीति-अनय यह,
मक्याविल की कटु चालें !
यह प्रीति खून खंजर की,
ये तलवारें, ये ढालें ॥३२॥

शतशत वर्षों के रण से
यह धर्मों का निपटारा !
जेहाद क्रुसेद कथा में
है डूब रहा जग सारा ॥३३॥

उमड़े काले बादल-से
मानव भक्षक दल के दल;
नदियाँ रंजित कर डालीं,
अबलाओं पर दिखला बल ॥३४॥

पाक मसीहों की टोली
खेलें खूनों से होली;
इनके पैगम्बर रोयें,
करती तलवार ठिठोली ॥३५॥

गोली प्रहार या कुन्दें,
पर सत्याग्रही न लौटें;
जालियाँ भलें बूटों से
दुर्मद दुराग्रही रौंदें ॥३६॥

पूरे हजार वर्षों के
इतिहास समेट फिरंगी;
कर लूट शूट अबलों की,
दिखलाई बात दुरंगी ॥३७॥

मुसलिम - हिन्दू - ईसाई,
पूजें सवर्ण तज भंगी;
बटवारे की ये चालें !
सिखलाई मादक संगी ॥३८॥

त्यागी अशोक की वाणी,
अकबर की वह लौ ठानी;
इतिहास जगाने आया
यह पुरुष अमिट बलिदानी ॥३९॥

प्रियदर्शी ने असि फेंका,
अकबर ने नस पहचानी;
किसने कह कर कर डाला ?
उपमा दें कोई ज्ञानी ? ॥४०॥

निहथों में बल पौरुष है !
कब किसने बातें जानीं ?
ज्वालायें जो फूटीं तो
पिघली प्रतिमा पाषाणी ॥४१॥

कहते उनके संबल हैं,
जड़ अर्थ काम सम्मोहन;
कहते भारत का बल है
आध्यात्मिक कर्म नियोजन ॥४२॥

जो कर्म वही वाणी हो,
वाणी कर्मों में उतरे;
ये तथ्य सत्य शिव सुन्दर
कितने मानव में निखरे ? ॥४३॥

ऋषियों ने भी तप तोड़ा
थिरकीं जब जब ललनाएँ;
व्रत राजाओं ने छोड़ा
पलटी हैं जब घटनाएँ ॥४४॥

यह कौन पुरुष आया है ?
छिटकी अद्भुत माया है !
उतना ही तेज अतुल है,
जितनी दुर्बल काया है ॥४५॥

राणा प्रताप की गाथा,
दूर्वादल धूल कहानी !
अब लौटो राजमहल में
हे सफल अथक अभियानी ॥४६॥

तहबन्द पाँच हाथों की
तज, पहनों यह जय-माला !
हे वैभव के अधिकारी !
तुमने ही पी है हाला ॥४७॥

वह सुनो सुनो क्या कहना,
सपना तो अभी अधूरा;
बेड़ी टूटी, न हुआ है
रे राम राज व्रत पूरा ॥४८॥
वन में न घरों में भी रे
दानव विशाल पैठा है;
उसके अंतर में देखो
मानव विशाल बैठा है ॥४९॥
वे बुद्ध, मुहम्मद, ईसा,
नानक, कबीर-से ज्ञानी
दानव को मानव कर दें
जन में उड़ेल निज बाणी ॥५०॥
हर मनुज कहाँ बदला जब
जब हित में बाधा आई ?
सब का हित रे अपना हित
यह नीति कहाँ अपनाई ॥५१॥

हम रोयें, या दुलरायें,
पर मुकुट नहीं पहनेगा !
अपनी हस्ती-मस्ती में
जग-जन अभियान सजेगा ॥५२॥

यह कथा करुणा है

बिहार (चम्पारण)

धरा धन्य चंपा की, नवल अस्त्र के प्रयोग,
शासक बल दिखलायें, स्पंदित थे सभी लोग ।

द्वितीय आलोक

प्रथम हूक कवि वाल्मीकि की मुखरित इसी स्थली में,
जननि जानकी बिलखी थीं इस चंपा वनस्थली में ॥१॥

इस तल पर ही न्याय हेतु लव-कुश ने युद्ध किया था;
विकट ग्राह ने सरित बीच गज को आबद्ध किया था ॥२॥

हिमगिर शृंखला धवल यह,
अनथके बुद्ध चरणों से,
बदले अशोक की गाथा
उगती अक्षय वर्णों से ॥३॥

हरियाली वैभवशाली,
निलहों का राज बना था;
वन में मंगल भोगें ये;
हल हक का ह्रास घना था ॥४॥

कहलावें राजा जो वे
थिरकें दे दें गलबांही;
धरती फोड़ें वे बांचें
अतिबली नियति जगमाँहीं ॥५॥

तिन कठिया कठिन करों से,
मद पद के सामंतों से;
कृषकों में रुधिर नहीं अब,
कह दो कंतों, संतों से ॥६॥

कहना भी सहज नहीं है,
भटपट कारा सहना है
करना यह महज नहीं है,
प्रतिपल मरु में तपना है ॥७॥

धरती चम्पा की उर्वर,
यह विमल त्रिवेणी धारा
अब तक कौटिल्य न केवल,
इसने सींचा जग सारा ॥८॥

जिसका न कनक था संबल,
वह राजकुमार सुदामा !
युग कथा कृष्ण को कह दी,
सह ली थी आठों यामा ॥९॥

अधिपति था ईश्वर अंशी,
अधिकारी राजा का भी;
फिर लुप्त प्रजा की प्रज्ञा,
बलिहारी न क्यों प्रजा ही ? १०॥

दुहिता व्याहें या मर जायें,
नद रचें, बनावें नालें
"घवही", "नवही", "हथियाही"
कर ये अनगिनत गिनालें ॥११॥

बहुओं के घूँघट खोलें
बनिता की लज्जा तोड़ें,
मुख खोलें या कुछ बोलें,
जड़ दें कोड़ों से फोड़ें ॥१२॥

इनके आँसू जो पोछें,
उनके पीछे ये धावें;
बन रक्षक भक्षक तक्षक,
किस विधि छूटकारा पावें ॥१३॥

कृषकों की अपनी बीती,
अधिकारी की मनमानी;
इनमें अंगार छिपा था,
सकता उबाल दृग पानी ॥१४॥

जिस थल मालवी तिलक थे,
उनकी जन-सभा जमीं थी;
करुणा वह चम्पारन की
न स्वराज समक्ष फबी थी ॥१५॥

गुरुवर गोखले मरण की
उनने जो बातें जानीं;
निज आँसू पीकर, पोंछे
कृषकों के दृग के पानी ॥१६॥

अपना दुख मिट जाता है
ध्वनि तुमुल महाकलरव में !
पिघला क्या लौह पुरुष रे ?
दुख छाया जब-जब भव में ॥१७॥

चरण चले, आशीर्वचन,
हल-धर की आनें ठानीं;
उसने विस्मित हो दे दी
अनुरूप महात्मा वाणी ॥१८॥

इस वेला में हमने भी
अपनी प्रतिमा पहिचानी
उस कृषक अपढ़ की जय जय
बन मुखर उठी जन वाणी ।।१९।।

धरा धन्य चम्पा की, नवल अस्त्र के प्रयोग
शासक बल दिखलायें, स्पंदित थे सभी लोग।।२०।।

विकराल भयावह या, छल से भरे अभियोग
काफूर हुए क्षण में, प्रमाणित सत्यायोग ।।२१।।

खुशियाँ हम खूब मनायें
यह पहली परम विजय की !
उनकी थी हार करारी,
जय अपने सत्य विनय की ।।२२।

बसता भारत गावों में
कवियों ने चाहा गाया;
सुषमा ललना की आभा,
निरखी केवल है माया ।।२३।।

निरखी किसने पर इनमें
उस तमाज्ञान की छाया ?
जन सूखे, मन उचटे की
लख अंधी गंदी काया ?२४।।

लगन कस्तूरबा-माँ सी,
मणि औ दुर्गा-सी बहनें;
'गिनती अक्षर माला' से
तब लगा तिमिर गढ़ ढहने ॥२५॥

लघु घूँट छूट थी मधुकी,
बिखरी नव ज्योति किरण-सी;
फिर सोयी खोयी जागी
जनता जागरित हिरण-सी ॥२६॥

अबला धवला कैसे हो ?
मुखर, सीख देने वाली !
वसन एक, धोवूँ कैसे ?
सिहर, चीख लेने वाली ॥२७॥

यह कड़वी विकट हकीकत,
तृण धूल दुकूल ढकी है;
धमनी शिक्षा दीक्षा से
शिथिल, रागिनी ऊबी है ॥२८॥

पर रोदन को अब छोड़ें,
जन-जन में अलख जगायें;
जिस विधि इस चंपारन में
कुहरे विकराल भगायें ॥२९॥

पढ़ लिखकर हल जोतेगा ?
वह क्या कल्याणी होगा ?
इस लंका में क्या ज्ञानी
जन निज शंका खोयेगा ? ॥३०॥

अविरल निर्मम बौछारें
कर सकीं न उसको चंचल;
घर को लौटे बंजारे;
अनुप्राणित घन-वन-अंचल ॥३१॥

उनने था वास जलाया
लुक-छिपकर घोर निशा में;
जन ने संकल्प किया दृढ़,
बढ़ते पग प्रगति-दिशा में ॥३२॥

प्रतिदिन हैं निर्बल हिसंक;
बलहीन निशस्त्र न कायर;
समझें न पहेला मूरख,
कह लें नित ज्ञानी शायर ॥३३॥

निलहो से मिल दासों ने
षड्यंत्र विषम रच डाला;
पिट जावें औ मिट जायें
वश मोहन करनेवाला ॥३४॥

निशि तम में घात तनी थी,
मद, पद में ऊँघ रहे थे;
अपनी करनी की खुद ही
खुशबू मधु सूंघ रहे थे ॥३५॥

यह थी पुकार द्वारों पर,
पट को सामंतो खोलो;
पहुँचा है खुद रे मोहन
अब इसे रुधिर में धोलो ॥३६॥

लख नही सकेगा कोई,
अड़चन चिर मिट जायेगी;
निधि सन्तों की न कभी भी
तुमको फिर अकुलायेगी ।।३७।।

रजनी के तिमिर प्रहर में
पर विभा चमक आई है;
मद विह्वल सामंतों पर
अद्‌भुत् महिमा छाई है ।।३८।।

युग के रावण नत होवें,
यह शक्ति अमोघ जगी है;
मत मानव रुदन करें अब,
यह भक्ति पुनीत लगी है ।।३९।।

इतिहास करे अब ईर्ष्या,
कलरव करता यह दर्शन;
"करनी-कथनी" की जोड़ी
अब नवल सबल आकर्षण ।।४०।।

बड़भागिन यही सदी है,
यह पुरुष परम विजयी है;
धधके विज्ञान न ज्वाला,
यह सत्य चरम विजयी है ।।४१।।

अब भावी गीता वाणी
चरितार्थ हुई मानो है !
परिभाषा सच लेनिन की
विफला हुई जानो है ।।४२।।

दल कौरव विकट विरोधी,
बल मिमटा हथियारों में;
पर आग्रह भीख नहीं है,
यह सीख आज नारों में ॥४३॥

अब राग तरुण है

दुहरावें, गावें तानें
उस जन की, प्रिय भेरी की;
घट से मिठास छलकी है,
मनु धन्य, जाति 'मेरी' की ॥४४॥

अभिनंदन जन के मंगल का,
महादेश अब जाग गया है;
दमन दनुज के संघर्षों का,
छाया अब अनुराग नया है।

तृतीय आलोक

चारो ओर तिमिर का घेरा !
चंदा की यहाँ न प्रतनु-किरण,
ओझल जगती है अमा गहन;
छाया है तम विकट घनेरा,
चारो ओर तिमिर का घेरा ॥१॥

विह्वल हैं निज नीड़ों में खग,
अनजाना है जीवन का मग;
नीरव है जग विटप-बसेरा,
चारो ओर तिमिर का घेरा ॥२॥

चमकी न अभी उजली रेखा,
जिसने न कभी इसको देखा;
चित्रित करता अमा चितेरा,
चारो ओर तिमिर का घेरा ॥३॥

प्राकृत विधि ने तूली फेरी,
वन से इसको ढक डाला।
गोरे किलकारी भरते औ
सूरज बरसाता ज्वाला ॥४॥

इसकी क्या बिसात जब यह है
आदम काला, घुंघराला ?
उपनिवेश यह महादेश था
खूब जमी थी मदशाला ! ॥५॥

भूल गया है, फूल नया है,
खण्ड कभी था लहराया !
प्रस्तर प्रतिमा रही कहानी,
जब था विशाले तरु छाया ॥६॥

हे गीत प्रीति के कवि गाओ !
आये हैं अब मनुज धरा पर,
जायेंगे ही भेद मिटाकर;
हे कुंकुम अक्षत बरसाओ !
हे गीत प्रीति के कवि गाओ ॥७॥

शंख, नाद, भेरी बजने दो,
जगा जागरण है, जगने दो;
हे स्वर, लय, गति, ताल मिलाओ !
हे गीत प्रीति के कवि गाओ ॥८॥

मुनि, चिंतक, कवि बड़ कल्याणी,
मंगल आशिष है बरसानी;
हे सब जन हिताय अब गाओ।
हे गीत प्रीति के कवि गाओ ॥९॥

कहने बकने इन, उनको दें,
आदि मनुज के ये वंशज हैं;
डारवीन की खोज निराली,
जानवरों के ये अंशज हैं ॥१०॥

अर्जन करने मोहन आया,
पायी विद्रोही की संज्ञा;
सिर से पगड़ी नहीं उतारी,
सत्ता की बस हुई अवज्ञा ॥११॥

उथल पुथल मचती है जब-जब,
भीषण प्रहार लगते चलने !
सिर या धड़ या पर कट जाये,
लगता है अंतर अति जलने ॥१२॥

उर की चिनगारी फिर सारी,
चलती आकुल उर से मिलने,
दबी आग जब चली जाग,
लगते जहान के प्राण उबलने ॥१३॥

काले मनुजों, मजदूरों में;
जोतित हुई ज्योति-रेखा सी;
अंग-अंग जागी उमंग,
खिंच आई अमिट स्वस्ति-लेखा सी ॥१४॥

प्रिटोरिया नटाल की गाथा
कारण मोहन की परिणति का;
सत्य मनन में अर्थार्जन की
अमिट अडिग सक्रिय अन्विति का ॥१५॥

यह महारोग है बलशाली !
है रचता सतत छदम् वेश ,
रे इसका ही अवशेष शेष;
डँसती नित नागिन विषवाली,
यह महारोग है वलशाली ॥१६॥

ये सभ्य-असभ्य अछूत-छूत !
ये आर्य-अनार्य रंग भूत !
मनु संतति जगी नहीं आली !
यह महारोग है बलशाली ॥१७॥

चौबीस पावक का युवक एक,
अन्तर की दृष्टि खुल गयी थी;
देखने परखने अनाचार
बाहर की दृष्टि तुल गयी थी ॥१८॥

पत्नी या सुत की तज ममता,
मन के विकार का दृढ़ संयम;
उन्नत प्रहार निष्कासन में
क्रोध-शमित, ज्योतित अंतरतम ॥१९॥

नहीं गुफा या कानन में पर
इस जग के ही कोलाहल में;
नये ज्ञान आये मोहन को
इस पीड़ित समाज-हलचल में ॥२०॥

बात-बात में घात-घात में
एक लगन ही क्यों उलझन में ?
तन को मन को खूब तपाने
रमने भीषण उत्पीड़न में ?॥२१॥

उत्तर इसके ढूंढ़े ज्ञानी
उन सब पुरुषों के जीवन में;
जिनकी लौ प्रज्वलित अभी है,
रे इतिहास, काव्य, दर्शन में ॥२२॥

ईश हम खेलें तेरे नाम !

वेद, पुरान, कुरान पढ़ें हम,
हिंसक शूली सेज चढ़ें हम;

विकृत करें जो रूप ललाम !
ईश हम खेलें तेरे नाम ॥२३॥

धर्म-कर्म का मर्म न जाने,
जैसी सुविधा वैसी तानें;

बाँटें हम निज निज धन-धाम !
ईश हम खेलें तेरे नाम ॥२४॥

तू अणु में, कण में, प्राणी में,
तू प्रकृति, पावक, पानी में;

पक्ष-विपक्ष व्यर्थ व्यायाम !
ईश हम खेलें तेरे नाम ॥२५॥

मुक्ति, मोह या जग विछोह यह,
उलझी अब तक ऊहापोह यह;

ललचें लखने नयनाभिराम !
ईश हम मेढ़ें तेरे नाम ॥२६॥

तन से, मन से, निज सुवचन से,
द्वेष-क्लेश क्यों होवें जन से;

बस, करें कर्म मनुज निष्काम !
ईश हम लें तब तेरे नाम ॥२७॥

मोहन ने किये सत्य-दर्शन
आत्म-मंथन, धर्म-चर्या में ;

सम्भलो अब मनुष्य धरा के
तुम सृष्टि-दृष्टि दिनचर्या में ।।२८।।

मिली बुद्धि है, अनुपम यह निधि,
है स्पष्ट मिली व्याख्या वाणी ;

औ तीर तरह जन-पीर चुभे,
हे जग के सर्वोत्तम प्राणी ।।२९।।

तुम शरीर, तकरीर तेज से
बनो परम ज्ञानी, विज्ञानी !

शरण अभय दो, कर दो निर्भय,
बन तुम ही भू के कल्याणी ।।३०।।

बांधा है भय तूफानों को,
जग को सुन्दर सुखद किया है ;

अगनित जन को गति तुमने दी,
अर्थ रूप क्या क्या न दिया है ।।३१।।

हे महान तुम में अपार बल,
कर जागृत अग-जग को पल में ;

धोयें मनोविकार द्वेष सब
तमाज्ञानमय इस भूतल में ।।३२।।

वर्ष एक मोहन ने चाहा
ज्यों पत्नी औ सुत से मिलने;
टिकी दृष्टि अधिकार-हनन पर
लगी विदा-वेला त्यों टलने ॥३३॥

सुन आह्वान, ठान धुन जनता
जुटने मिटने लगी उमड़ने;
कल तक रे जो शक्ति दबी थी
लगी आज वह आग उगलने ॥३४॥

सभा एक नेटाल स्थली में
शाखा लगी पनपने खिलने;
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई
लगे पुलिन-जल से वे मिलने ॥३५॥

लौटा मोहन, बस मोहन पर
पत्थर-रोड़े लगे बरसने;
फिर मोहन की अडिग आन पर
वह सत्ता भी लगी पिघलने ॥३६॥

सत्य अनादि विशाल विटप है,
"सेवन से उगते अनेक फल";
यह अमोघ था मंत्र कि जिसने
मानव में भर दिया शक्ति-बल ॥३७॥

मजहब प्रान्त देश सब निष्फल,
रण में यदि मनुष्य मृत घायल;
कर्म-वचन-मन से सेवन कर
मनुज बने रे निर्मल निश्चल ॥३८॥

ये हैं कुली, त्वचा न धुली है,
इनका घर है विषम विषैला;
ये भी ईश्वर की औलादें,
पर ईश्वर हैं कहाँ अकेला ॥३६॥

फैली सर्वत्र महामारी,
मोहन सेवक था उस वेला;
दुखियों, दीनों में उमड़ उठा
निस्वार्थ सेवकों का मेला ॥४०॥

सामन्तों ने देखा परखा
मोहन का यह रूप निराला;
भेद द्वेष कटु भाव घटे सब
बनी पर्ण कुटिया जनशाला ॥४१॥

ज्ञान भरा है सब ग्रंथों में,
मानव कहाँ समझ पाया है?
रस्किन की पुस्तक में देखे
सर्वोदय तक जग आया है ॥४२॥

पशुगण, सत्य, निरंकुश है पर
मानव को विवेक-अंकुश है;
रहें न सब विकार अनियंत्रित,
चढ़ा बुद्धि का तीक्ष्ण धनुष है ॥४३॥

अभिनन्दन जन के मंगल का,
महादेश अब जाग गया है;
दमन दनुज के संघर्षों का,
आया अब अनुराग नया है ॥४४॥

चिर स्निग्ध वरुणा है

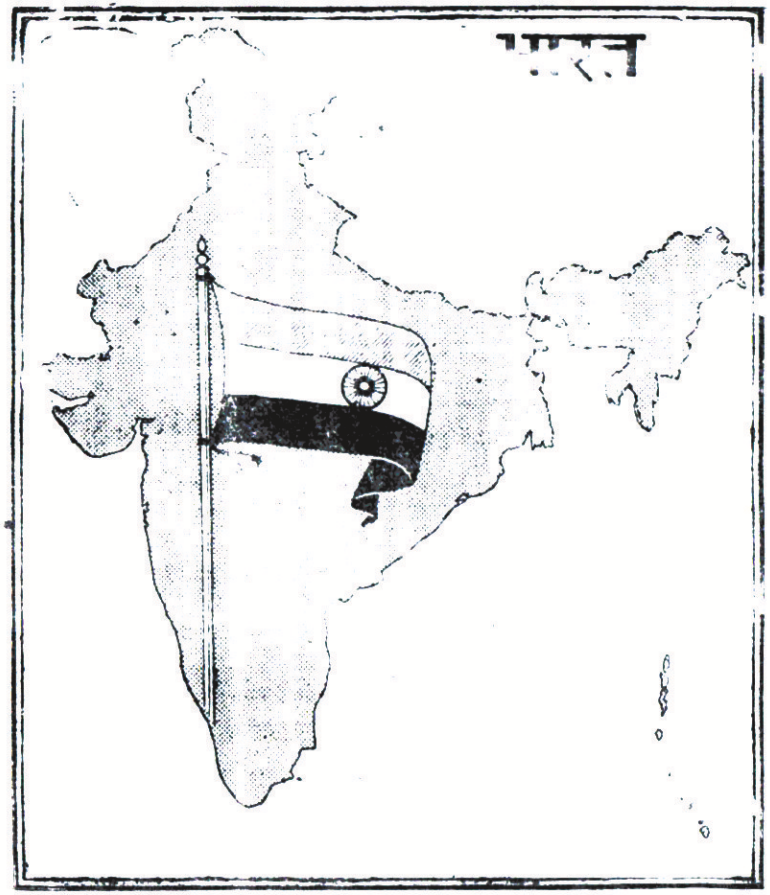

नित नवीन, चिर प्राचीन देश !
तेरे घट में अमृत अशेष !!

चतुर्थ आलोक

नित नवीन, चिर प्राचीन देश !
तेरे घट में अमृत अशेष
"वेद-उपनिषद्-पुरा" के देश !
तेरे मुख पर क्यों क्लांति क्लेश ॥१॥

अहिंसा परम धर्म के देश !
अय महावीर, अय बुद्ध भेष !
मुखरित करते गीता अजेश,
नित नवीन, चिर प्राचीन देश ॥२॥

लो शूल बने अब फूल विमल,
पीयूष धार बहती अविरल;
मोहन ने पी ली घूँट गरल,
यह सरल अहिंसा-व्रत निर्मल ।।३।।

तप अग्नि-वह्नि में उबल उबल,
आत्मा प्रबुद्ध का ले संबल;
जूझे अनीतियों से पल पल,
लो शूल बने अब फूल विमल ।।४।।

ऐसा तूने क्यों कर डाला ?
मोहन ने भुज में ली समेट
थी ओर-छोर भड़की ज्वाला;
ऐसा तूने क्यों कर डाला ?।।५।।

चौरा-चौरी का दृश्य विकट
रे था विनाश धूमिल काला !
यह सत्यनाश था सर्वनाश,
ऐसा तूने क्यों कर डाला ?।।६।।

अंग-अंग हैं फड़के,
भारत के मुख दमके;
जन-समूह हैं भड़के,
हक लेंगे हम लड़के ॥७॥

डंडी पथ पर चल के,
घन संघर्ष नमक के;
आये हैं सब सज के
मोह-प्राण अब तज के ॥८॥

टूटे बल शासक के,
फूटे स्वर चिंतक के;
गये सहित जब दल के,
आँसू तनिक न छलके ॥९॥

नहीं चूड़ियाँ खनके,
नारी के प्रण रण के;
व्रत ले बाल तरुण के,
नारे मोहन जय के ॥१०॥

माँगती अहिंसा अनुशासन !
मन से विकार का निष्कासन;
ईर्ष्या विरोध का उन्मूलन,
जन-जन के उर में मधु प्लावन ॥११॥

वीरों का व्रत यह महा गहन !
यह नहीं भीत जन का रोदन,
छूटे न कभी रे सदाचरण !
माँगती अहिंसा अनुशासन ॥१२॥

ऋषियों में बन तप-आकर्षण,
कवियों में बन मंगल चिंतन;
शूरों में बन व्रत के पालन,
न्यायी में बन निष्पक्ष वचन ॥१३॥

माँगती अहिंसा अनुशासन !
निर्भय हो रे मानव का मन;
वीरों का व्रत यह महा गहन,
छूटे न कभी रे सदाचरण ॥१४॥

नारी तू अनबूझ पहेली,
आदि पुरुष की आदि सहेली;
प्रिया बनी तू धनी रुपहली,
कवि की नित कल्पना नवेली ॥१५॥

रूप मेनका ऋषि सुधि हर ली,
ईव हेलेन बन कर खेली;
मानव जीवन की रंगरेली!
नारी तू अनबूझ पहेली ॥१६॥

नारी परम शक्ति जननी है,
नर की यह सहज धर्मिणी है;
सुख-दुख की भुक्त भोगिनी है,
नारी परम शक्ति जननी है ॥१७॥

तेज नरों की तरंगिनी है,
विस्मृत या प्रियतमा बनी है;
यह पुरुष की सबल धमनी है,
नारी परम शक्ति जननी है ॥१८॥

रति का सम्मोहन अलबेला,
बूझो कौन गुरु कौन चेला ?
सुधि इसकी ही आठों वेला,
आवे जावे भले अकेला ॥१९॥

आग उदर की, माँग जिगर की,
दुनिया में बस यही झमेला;
जब रति अटकी तब मति भटकी,
कौन करें इसकी अवहेला ॥२०॥

मुनियों, कवियों, राजाओं ने
सिर्फ नहीं रे इसको झेला;
गुरु फ्रायड ने जलवा देखा,
बेउम्र खेल सबने खेला ॥२१॥

रति का सम्मोहन अलबेला,
बूझो कौन गुरु कौन चेला ?
माँग उदर की, आग जिगर की
बेउम्र खेल सबने खेला ॥२२॥

कथा पुरुष परम विजय की है,
रति की धार क्षरित क्षय की है,
इसने कटु बीती संचय की है,
कथा पुरुष परम विजय की है ॥२३॥

कथा पुरुष परम विजय की है,
रति की अवगति निर्लय की है;
पूर्वज के भीषण भय की है,
अब यह अपनी ही जय की है॥२४॥

यह कथा विकार उदय की है,
यह परम पुरुष की जय की है;
इसने सब की शंका तृष्णा
खुद ही अनुभव निर्भय की है॥२५॥

कथा एक उस आलय की है,
लय तन के क्रय-विक्रय की है;
अन्य नरों ने निर्दय की है,
इस जन ने पर अनुनय की है॥२६॥

सज्जित तन ले बैठ अभागिन,
प्रतिमा वह बहन काव्य की है!
मड़राये जिस पर मनुज वृन्द,
वह जानो देवालय की है॥२७॥

रमणी की परिणति जननी में,
व्याख्या नई इस सदय की है;
अग्नि शमन कर लें अब मानव,
यह उठी फुहार मलय की है॥२८॥

इसने कह दी, निर्भय की है,
घटना वह स्वप्नोदय की है;
रमणी क्यों उतरी धमनी में?
यह विष-वासना अजय की है॥२९॥

साहस बटोर, ज्ञानी विभोर,
गाथा यह सत्य विजय की है;
यह वज्र पुकार हृदय की है,
यह बही फुहार मलय की है ।।३०।।

कथा पुरुष परम विजय की है,
गाथा यह सत्य विजय की है;
कथा नहीं यह संशय की है,
रति की धार क्षरित क्षय की है।।३१।।

यह लाख-लाख संस्करण देख ।
रण के आमंत्रण-मरण लेख ।।
रे कुटी महल में अमित भेष ।
यह लाख-लाख संस्करण देख ।।३२।।

गत तंद्रा मुद्रा एक देख ।
यह विहँस मृत्यु का वरण देख ।।
गोली कुन्दे पर मरण देख ।
यह लाख-लाख संस्करण देख ।।३३।

यह सुरा अर्थ मद त्याग देख ।
वैभव से घोर विराग देख ।।
प्रज्वलित सबों में आग देख ।
यह पुरा-अर्थ-मद त्याग देख ।।३४।।

बलि की अनेक, बहु मूर्ति देख।
नर-नारी की यह स्फूर्ति देख॥
यह जीवन की आपूर्ति देख।
यह सहज सत्य की मूर्ति देख॥३५॥

आह्वान एक, परिधान एक।
प्रतिमा अनेक पर प्राण एक॥
आहुति स्वच्छंद, अमन्द देख।
विश्वास एक, निष्पन्द देख॥३६॥

यह लाख-लाख संस्करण देख।
रण के आमंत्रण-मरण लेख॥
आह्वान एक, परिधान एक।
आहुति बेरोक, हुंकृति एक॥३७॥

कैसी सभ्यता सुसंस्कृति है?
छलना यह, कोरी विकृति है!

मिलती न जन्म पद वैभव से,
रे ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति दीप्ति;
वे ज्ञान सभी खो गये कहाँ
परिणामों की निर्लिप्ति तृप्ति?॥३८॥

यह वर्ण भेद घृणिताकृति है।
कैसी सभ्यता सुसंस्कृति है?॥३९॥

दृग में जल, जल से भींगे तन,
ये दलित गलित पुनीत पावन;
सेवा करते निशिदिन प्रति क्षण,
इनके तन मन भर दें पुलकन!

मोहन ने भर दी हुंकृति हू,
छलना यह, कोरी विकृति है॥४०॥

इन्हें चाहिये निरे न भाषण,
इन्हें चाहिये निरे न शासन ;
मंगल व्रत लें, मंगल घट लें,
इनके मध्य लगायें आसन ।।४१।।

रे यही सभ्यता संस्कृति है।
सुन्दर सुखकर यह संस्कृति है ।।
जो सत्य-अहिंसा-तपमय रे
पावन प्रभु की वह आकृति है ।।४२।।

तन से संस्कार रचो हे ।
मन से कुविचार तजो हे ।।
कर्म वचन में मधुर रहो ।
मोहन के पन्थ सजो हे ।।४३।।

तुम मानव,
तुम से भव;
तुम सुन्दर,
तुम अभिनव !
यह जानो,
यह मानो ।।
हे मानव,
ज्योतिर्नव ! ! ।।४४।।

यह प्रीति सगुण है

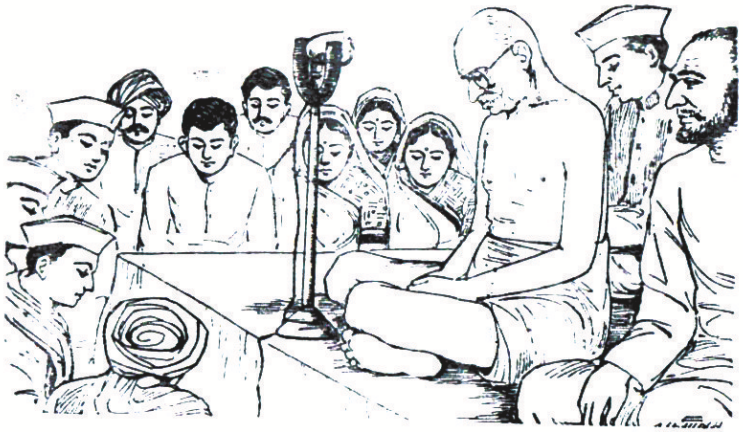

पद से भेद निष्कासित, पद से सब का मंगल !
राजव्रत निर्मम तप, कड़वी घूँट हलाहल !!

पंचम आलोक

ईश्वर अगम अगोचर,
जनता निर्मम ओझल;
ईश्वर चिर वरदानी,
जनता याचक केवल ॥१॥

अंग है अभिन्न सदा,
एक विटप में पत्ता;
रहे अलग अब तक पर
यह जनता, यह सत्ता ॥२॥

जनता स्वार्थी अथोर,
इसकी अदभुत ममता !
घटना बीती अनेक
ला न सकी है समता ।।३।।

मार्क्स-लेनिन ने खींची
एक स्पष्ट-सी रेखा:
समता में समाज को
इनने था अवलेखा ।।४।।

एक से द्वय, द्वय बहुल,
बहुल ही बना समाज;
समाज बना व्यवस्था,
कहते हम राज आज ।।५।।

इसका आधार त्याग,
जो है संगठन मूल;
बर्बर से सभ्य मनुज
जाते हैं इसे भूल ।।६।।

तब ही अपराध घटित,
जब अधिकार अपहरित;
अन्य क्षरित, अपना हित,
होवें जन अति गर्वित ।।७।।

यह अपहरण जनक है,
कलह, समर, दंगल का;
जग में फैले प्रमाद
द्वेष कटु अमंगल का ।।८।।

यह अपहरण चिह्न है
पशु के अंश तत्त्व का ;
यह अपहरण शूल है
कोमल मनुजत्व का ॥९॥

यह अजेय अब तक है ,
पूजित है, जीवित है;
रहती जगती इससे
केवल उत्पीड़ित है ॥१०॥

जनता माँगे अनुचर,
जनता माँगे विराग;
जनता से नेह अटल,
अपना सर्वस्व त्याग ॥११॥

इसे नृपति ने जाना,
तभी सुलभ लोग-राग;
उनने जब-जब छोड़ा,
भड़की है प्रजा-आग ॥१२॥

मिट जाती है सत्ता,
डूबे समर में लोक;
बींधती कलम की जब
अथवा संगीन-नोक ॥१३॥

रूसो की वाणी में,
क्रूर शाह के बल में;
गाँव, राजधानी में,
विप्लव उमड़ा पल में ॥१४॥

कलम चली हैं तत्पर,
तलवारें भी बर्बर;
राजा भोगी चेतें,
बल क्षण भंगुर नश्वर ।।१५।।

लेनिन की बहु कथनी,
व्याख्या बड़ी पुरानी;
इससे इतिहास भरा,
मनन करें सब ज्ञानी ।।१६।।

जनता माँगती त्याग,
देती है तभी राग;
सुप्त आग रहती जो
उठती है वही जाग ।।१७।।

भारत तेरा गौरव,
मचा न ऐसा रौरव !
नाचे जो पी आसव,
क्षत-विक्षत ये कौरव ।।१८।।

राजा लघु, प्रजा बड़ी,
तेरे ही आँगन में;
घटनायें चरम घटीं
तेरे ही प्रांगण में ।।१९।।

राजा वे राम सदृश,
प्रजा उल्लसित, प्रमुदित;
राम राज प्रजा राज,
प्रजा पल्लवित पुष्पित ।।२०।।

पद से पद निष्कासित,
पद से सब का मंगल;
राज व्रत निर्मम तप,
कड़वी घूँट हलाहल ॥२१॥

असली तगड़ी उत्कट
पद वैभव की लंका;
जनता सीता बिलखे,
मिटी न अब तक शंका ॥२२॥

त्रास विकट अट्टहास
उन्नति में सतत खलल;
थाती रक्षित तब ही,
कल नहीं जहाँ इक पल ॥२३॥

उन्नत प्रतिमान ज्ञान
सुलभ इसी धरणी में;
राज में विराग त्याग,
सुलभ इसी अवनी में ॥२४॥

ममता पक्ष अशोभित
समता परिभाषा में;
शासक सम, हमदम हैं,
जनता अभिलाषा में ॥२५॥

वसुधैव कुटुम्ब सुव्रत
यह है अक्षय गरिमा !
वर्ण-रंग के विभेद,
यही कालिमा लघिमा ॥२६॥

यही नीति यही प्रीति,
प्रीति देश नहीं अलग;
अनहद यह नाद बजे,
गूंजे जीवन अग-जग ॥२७॥

राज धर्म अर्थ राग
माँगे सिर्फ आचरण;
एक धरातल पर ही
संभव हैं एकीकरण ॥२८॥

भेद कलुष मिट जाये
वहिरन्तर जीवन का;
महलों के रागों का
जीवन के दर्शन का ॥२९॥

कह देना सहज सरल,
कठिन दुःसह याचना;
जब औलाद फौलाद,
तब ही सफल यातना ॥३०॥

सम्भलें सभी जन, हों
योगी कवि या नेता !
श्रेय शक्ति तब ही जब
होवें इन्द्रिय - जेता ॥३१॥

बीसवीं सदी भागिन,
फलता ज्ञान चिरंतन;
श्रेयोन्मुख रहें सदा
कल्याणी अन्वेषण ॥३२॥

बीसवीं सदी भागिन,
मुखरित जग-जन-दर्शन;
बिना पक्ष की समता,
प्रकटित अब उदाहरण ॥३३॥

यह उदाहरण मोहन
दूसरा न कोई जन;
पीयूष धार बहती,
सब कर लें अवगाहन ॥३४॥

सुकरात के अडिग प्रण,
ईसा के पीर-सहन,
गौतम के सदाचरण,
ऋषि के आशीर्वचन ॥३५॥

अनुभव तप के अर्जन,
गहन सत्य के चिन्तन,
नेता के सहज सृजन,
ले आया सब मोहन ॥३६॥

हम में तुम में जन में
तनिक नहीं अवगुण्ठन;
लोक नीति एक रीति,
नहीं गाँठ या बन्धन ॥३७॥

प्रेमधार से जग का
केवल होवे सिंचन;
यही अराधना यही
साधना करे मंथन ॥३८॥

अपना तन, अपना मन,
क्यों कोई उद्वेलन ?
तन श्रम से हो अर्जन,
मन से पर-हित याचन ॥३९॥

यह बुद्ध का दर्शन,
गीता का यह गुंजन !
करें अब अगाध मनन
भारत के वासीगण ॥४०॥

बने न उद्योग भीम-
कायिक संगठन सृजन!
न धरा के ऐहिक या
कायिक भू - परिवर्त्तन ॥४१॥

पर घर - घर के इसमें
निजस्व का संरक्षण;
जन - जन के धंधों का
स्थापन जीवन - यापन ॥४२॥

क्रिया - क्लाप आलाप
रहे न केवल शासन;
जन - जीवन पंगु और
सब कुछ केवल शासन ! ! ॥४३॥

सत्ता या प्रजातंत्र
मानव - हित के साधन !
राजतंत्र ही न सिर्फ
रहे गुरुत्वाकर्षण ॥४४॥

जनता के लिये न हो
शासन सिर भार वहन;
जनता भिक्षुक याचक,
शासन बाँटे बलकण ।।४५।।

प्रजातंत्र पर है रे
असत्य का आरोहण;
नये रूपों में प्रकट
मानव के उत्पीड़न ।।४६।।

जनता बोये सींचे
श्रम के मृदु-मृदु उपवन;
माली वैभवशाली,
माध्यम केवल शासन ।।४७।।

नहीं अलग नहीं विलग
जनता अथवा सत्ता;
फूल खिलें हरा रहे,
तरु का पत्ता - पत्ता ।।४८।।

तवारिख खोलें वरक,
इतिहास निजी पन्नें;
सभ्यता हटा लें पट,
संस्कृति के मणि गिन लें ।।४९।।

मानव पूरा मानव
देखें आज भुवन में !
है नयन जुड़े वरबस,
डूबे हृद पुलकन में !! ।।५०।।

विषाद दारुण है

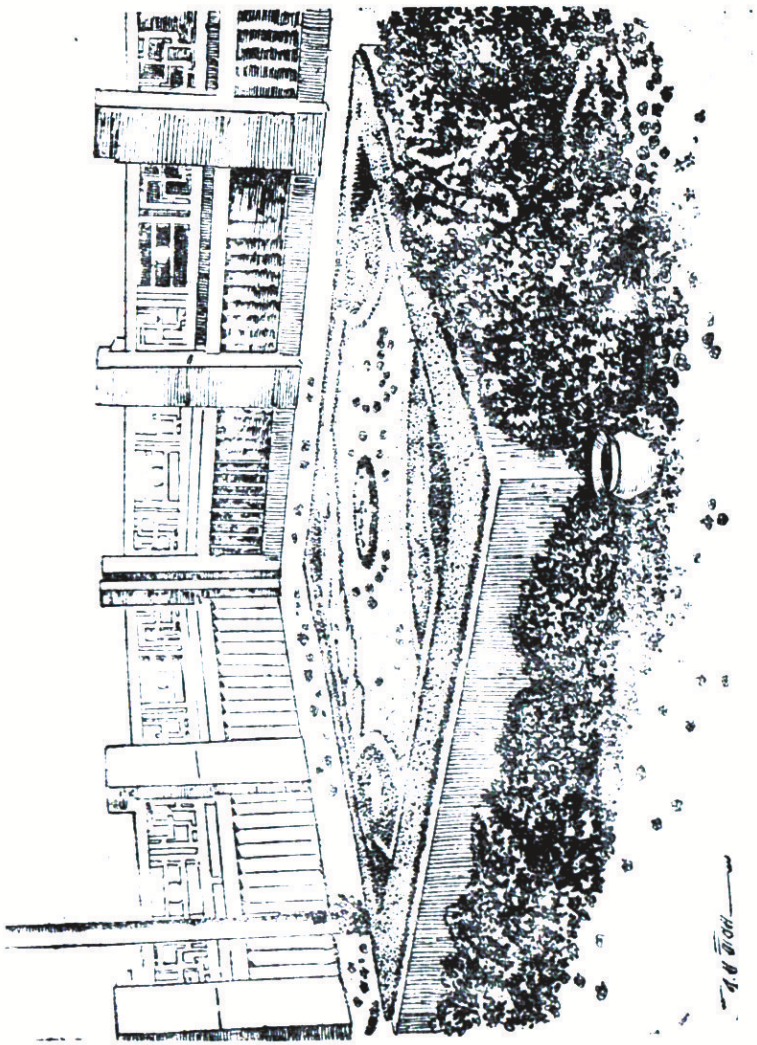

ज्ञान-ज्योति नहीं बुझी है, है लुटी न निधि मानव की !
लौ न वह लुप्त होगी रे, प्रतिनिधि होगी इस भव की !!

षष्ठ आलोक

यमुना-तट पर बहु क्रंदन,
"ज्ञान-ज्योति बुझ गई है" !
मानस-पट पर कटु अंकन,
मानव की निधि लुट गई है ! ! ॥१॥

अवनी की शिरा-शिरा में
पीर भरी है कसक-व्यथा;
कंठों में विकल रागिनी,
रागिनी में वियोग-कथा ॥२॥

नव सुख में हँसनेवाला
दुख की आहों में जलता;
आहों की धूम-लपट में
चिनगारी - सा है पलता ॥३॥

आहों की इन लपटों में
स्वाहा होता स्मृति-घृत है;
हाला की इन लहरों में
मिल विष होता अमृत है ॥४॥

कौन जन न जान रहा है ?
मृति निश्चित, जग नश्वर है !
कैसे धीर धरे मानव ?
अति दारुण करुण प्रहर है ॥५॥

आँसू न उमड़ते यों ही
नयनों से बहकर पानी;
बह जाती है गालों पर
यों ही यह सजल निशानी ॥६॥

अस्पष्ट कसक अंतर में
लेती है नित्य हिलोरें
प्राणों में पीर भरी जब
भींगी हैं दृग की कोरें ॥७॥

यह जलन प्रचंड दुसह है,
उठती ज्वाला है जग की;
हो गयी रक्त की धारें
रे शिथिल सूख रग-रग की ॥८॥

है रुंधा कंठ, वाणी है
परिणत आँखों के जल में;
आहें आकुल हम सब की
उमड़ीं आँसू अविरल में ॥९॥

थी धूल बनी जिस थल की
पावन तेरे चरणों से;
उसका है रूप निखरता
मेरे इन अश्रु-कणों से ॥१०॥

पृथ्वी की इन राखों में
सोयी है प्रतिमा तेरी!
करुणा साकार बनी है
बदले में माया मेरी ॥११॥

जाती क्यों काट जगत को
आँसू की धार छुरी-सी?
लुट जाती निधियाँ सब की,
जगती अब शून्य पुरी-सी ॥१२॥

मानव का प्रेमी, संगी
जीवन से आज विलग है;
उसकी काली आहों में
रे झुलस गया यह जग है ॥१३॥

संध्या की धूमिल वेला,
फूलों के पंख कटे हैं;
इस बढ़ती हुई निशा में
जीवन के चिह्न मिटे हैं ॥१४॥

व्याकुल रो धरा उठी है
मानस के आतुर स्वर में;
भय कंपन-सिसकन मानो
पंछी के चुप-चुप स्वर में ॥१५॥

अब सारी जगती देखो
मिटती है काल-निशा में;
यह ज्योति नहीं, अँधियाली
उमड़ी प्रत्येक दिशा में ॥१६॥

है आज नहीं हरियाली,
रे नहीं पवन में गति है;
रागिनी नहीं विहगों में,
नलिनी भ्रमर में न रति है ॥१७॥

संध्या का विषम प्रहर है,
रुधिरों की लाल किरण है;
ज्वाला रे क्या यह जग की
जलते तुहिनों के कण हैं ॥१८॥

आँखों की पलकें प्लावित,
रो उठती तट की लहरी;
यह गहन अमा की छाया
छा रही चतुर्दिक गहरी ॥१९॥

ये लाख कोटि जन हैं ही,
मीता, कुरान या वाणी !
गिरि गुहा कंदराओं में
मंडित अगनित तप प्राणी ॥२०॥

लौटा दें इस मानव को
निज अनुपम शक्ति लगाकर;
अन्यथा व्यर्थ जप-तप हैं
जीवन दें भक्ति जगाकर ॥२१॥

हे आदम की औलादें !
हे मनु, मुनि की संतानें ! !
नित छलते रहते तुमको
जीवित शैतान पुराने ॥२२॥

विष से सुकरात मरण,
ईसा के शूल - वरण;
कृष्ण व्याध व्यथित चरण,
करते फिर से क्रंदन ॥२३॥

आकुल क्रन्दन न रुदन है
मोहन के आज मरण का;
दुःख दारुण दावानल है
अज्ञान परावर्त्तन का ॥२४॥

आकुल क्रन्दन न रुदन है
दनुज से मनुज भक्षण का;
है दनुज अनुज ही केवल
इस कटु अनुभव, अर्जन का ॥२५॥

आकुल क्रन्दन न रुदन है
इस नर के विलयन का;
अवतरित नहीं पहिचानी
प्रतिमा अस्त विसर्जन का ॥२६॥

उतरे मनुजों में अब तक
जो देव गगन से ईश्वर;
था उनकी महिमा लेकर
अदभुत् विराट पैगम्बर ॥२७॥

हमने देखे विस्मय से
विविध करिश्में बहु जौहर;
धरणी सुखकर अवनी में
परिवर्तित तत्पर सत्वर ॥२८॥

वह मानव, पूरा मानव,
मानवी-रूप, श्रेयस्कर !
धरती कृत कृत्य, धन्य हम
निज संभावना निरखकर ॥२९॥

सच्चा मानव इस भव का
अब है मानव से ओझल;
कवि गायें, मानव रोयें
अब भर-भर आँखों में जल ॥३०॥

रोदन है किन्तु अशोभन,
यह रहा न सजल अहिंसक !
कर्म-धर्म मर्म रेत में
था रुका न पल भर चिंतक ॥३१॥

ज्ञान-ज्योति नहीं बुझी है,
है लुटी न निधि मानव की !
लौ न वह लुप्त होगी रे,
प्रतिनिधि होगी इस भव की ॥३२॥

वह निधि तो करती है रे
अपनी समृद्धि अपने ही;
इस ऋद्धि-सिद्धि में होगी
जग की सुवृद्धि अपने ही ॥३३॥

रवि डूबे कभी नहीं हैं,
भाग अर्द्ध रहा निशा में;
नव पुलक नवीन विभा ले
रवि लौटे नित्य उषा में ॥३४॥

जन का प्यारा वह रवि तो
भासित जग अन्तस्तल में;
आलोक भरेगा प्रतिपल
गिरि गह्वर अवनीतल में ॥३५॥

बढ़ता ही रहा मनुज यह
झंझा में औ' मरुस्थल में;
विक्षत होने पर भी ये
पग बढ़ते हैं दलदल में ॥३६॥

शून्य जब साकार निखरा,
तब हुए फिर जीव-उद्भव!
आदि, प्रस्तर, लौह, कलियुग
हैं प्रगति के ही चरण सब ॥३७॥

पशुओं की अनेक विधियाँ
तज दीं यह काया पाकर;
बिलमेगा मनुज नहीं, अब
इस महा प्रगति के पथ पर ॥३८॥

प्रतिशोध, विरोध, क्रोध या
रवि-किरण ज्वाल में जलजल
टोली को हमजोली में,
कर, अंतराल से निर्मल ॥३९॥

वसुधा के भय, कंपन या
बन बाल - बाल में निश्चल;
विचरेगा मानव निर्भय
रे सबल चाल में प्रतिपल ॥४०॥

या एक नहीं बहुजन ही
फूलेंगे इस समुदय में;
किरण, पवन, मिट्टी, जल सम
मंगल है सर्वोदय में ॥४१॥

बाहर संकीर्ण परिधि से
जायेंगे निखर - निखर कर;
निज रवि के व्रत जप, तप चिर,
विचरेंगे शिखर-शिखर पर ॥४२॥

अब मानस सुप्त जगाने
कवि बंशी फूँक रहा है;
दूर, निरंतर, चिर गूंजे
आहत खग कूक रहा है ॥४३॥

शांति अक्षुण्ण है

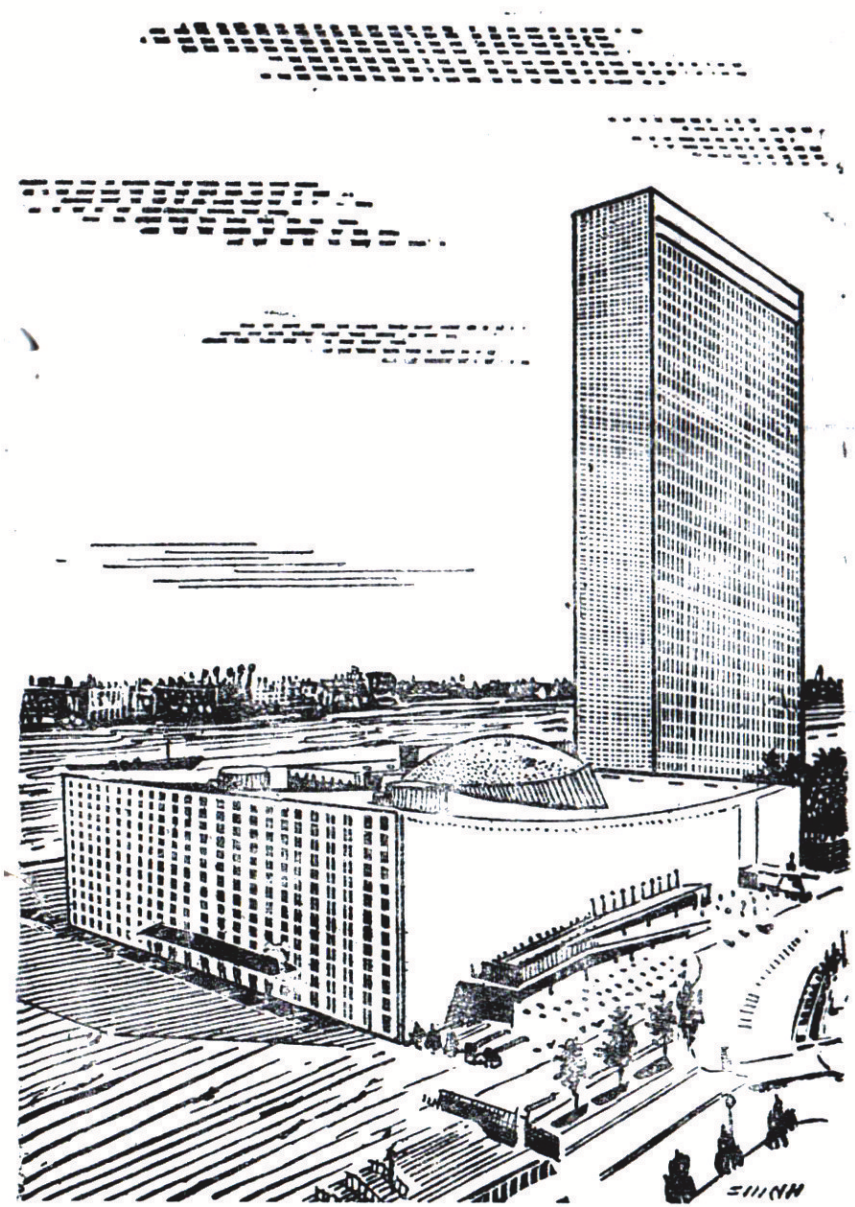

प्राणित है यह संस्था;
शांति श्री सुव्यवस्था ॥

सप्तम आलोक

मेरे ये गीत सुघर
चूँकि न ये श्रेयस्कर ;
मेरे ये छंद मुखर
इसलिये कि ये वे स्वर ॥ १ ॥

जिनके हैं बोल अमर
आये थे जो पग धर !
आकुल तप्त धरा पर
मिटे स्वयं हत, जल कर ॥ २ ॥

मैं विनीत वे पुनीत,
मैं नहीं कुशल कविवर ;
विश्व-भारती है यह,
समुन्नता गिरा प्रखर ॥ ३ ॥

वे गिरवर, मैं लघुतर,
अमिट काव्य यह उर्वर ;
इसलिये कि इन में हैं
मंथन चिन्तन मर्मर ॥ ४ ॥

जगे नहीं हैं अबतक
विज्ञानी नारी - नर ;
सह प्राणी नहीं हुए
अबतक निर्लिप्त निडर ॥ ५ ॥

मंचों पर बैठे हैं
अमित मूर्त्ति भयंकर ;
सत्ता सुरा में रमे
हैं शासक बली प्रवर ॥ ६ ॥

एक घाट पर पीते
जल नहीं अभी जी भर,
अभी भी बहु बितायें
मानव - जीवन दूभर ॥ ७ ॥

मेरे ये गीत सुघर,
चूँकि न थे श्रेयस्कर;
मेरे ये छन्द मुखर,
चूँकि यह काव्य उर्वर ॥ ८ ॥

द्वन्द्व रहे तनिक नहीं
मानव या हरि गायें;
अभिलाषा इतनी ही
जग के हित बलि जायें ॥ ९ ॥

प्रीति के ये अंकुर नव
श्रम से सतत उगायें;
मोहन के पथ पर ही
अविचल हो कर जायें ॥ १० ॥

जन में हरि वरदानी
देखें समझें पायें;
द्वेष-दंभ कभी नहीं,
न विषम राग लगायें ॥ ११ ॥

हरि ढूँढें कवि जन में,
आशा जगी भुवन में !

दुनिया सुधरी है कुछ,
कविता सुथरी है कुछ !
"रसल" गिरा मन मन में!
हरि ढूँढें कवि जन में ! !॥ १२ ॥

प्राणित है यह संस्था,
सहज शांति सु-व्यवस्था !
कमी हुई उलझन में,
हरि ढूँढें कवि जन में ! !॥ १३ ॥

न विस्फोट गर्जन में,
नहीं दनुज - नर्तन में;
सुलभ न भंगल रण में !
हरि ढूँढें कवि जन में ! !।। १४ ।।

जीवन या प्राण - दान,
नव - नव आलोक - ज्ञान,
रवि की अमर किरण में
ढूँढें हरि कवि जन में ।। १५ ।।

वह कटु तप , अब मधु व्रत,
'ले चल' आगे अविचल !
स्मरण रहे कीचड़ में
खिलते कोमल शतदल ! !।। १६ ।।

पलते शूल में फूल
रंग - विरंग समुज्ज्वल ;
वह कटु तप, अब मधु व्रत,
'ले चल' आगे अविचल ।। १७ ।।

ध्यान रहे इतना ही
पग से क्षत न दूबदल ;
छींटो 'जर्जर, हत' पर
अविकल यह गंगाजल ।। १८ ।।

ईश भी सुगम होंगे
मिलें प्रेम - वश विह्वल !
वह कटु तप, अब मधु व्रत,
'ले चल' आगे अविरल ! !।। १९ ।।

यह समता परिपाटी !
धरा , धरोहर बाँटी;
खूँरेंजी सब माटी !
लो, यह समता खाँटी ! !॥ २० ॥

मोहन की नव झाँकी,
हमने फिर है आँकी;
अब यह 'दान' ज्ञान है;
पूरे हों जो बाकी ॥ २१ ॥

यह समता परिपाटी !
धरा, धरोहर बाँटी ;
मोहन की नव झाँकी ,
चेतें अब सब साकी ॥ २२ ॥

यह बड़ी विषम विपदा !
अर्जित न यह संपदा,
यह ठहरेगी न सदा,
छल से भरी अदा !! ॥२३॥

बाँचे न मोहन नाम,
न संयत या निष्काम,
स्वार्थ परत रहें जो
अविराम आठों याम ॥२४॥

पग रग में होवे बल,
टूटे यदि क्रूर सदल;
तौभी व्रत रखें अटल,
वे जो मानव निर्मल ॥२५॥

बाँचें यह वही नाम,
धरें न दूसरे नाम !
जिनके बहु मनोकाम,
विचलित हैं दिवा - शाम ॥२६॥

मौन रहें वे त्यागी,
जन - जन के अनुरागी ।
वे ही हैं बड़भागी
जिनने ली लौ जागी ॥२७॥

बाँचें यह वही नाम,
जिन्हें नहीं क्रोध - काम;
यह तप, यह व्रत ललाम !
यह है रूप अभिराम !! ॥२८॥

फूटे सलिल इस धरा से,
यह युग बोध
यह चिर बोध;
माँगे यह
निरे अनुरोध;
छूटे गान बे-सुरा से !
फूटे सलिल इस धरा से !! ॥२९॥

यह ताज,
मनुज की लाज;
रहे गूँजते
वाद्य - साज !!
टूटे नेह अप्सरा से !
फूटे सलिल इस धरा से !! ॥३०॥

कवि गीत प्रीति गाओ !

आये, गये धरा पर,
आदिम, भेद मिटाकर
मुनि, यह ध्यान लगाओ !
कवि गीत प्रीति गाओ !! ॥३१॥

जागरण जगे, जागें,
भेरी सुन, हम आगे;
किन्नर सस्वर आओ !
कवि गीत प्रीति गाओ !! ॥३२॥

मानव यह कल्याणी,
मंगल के वरदानी;
सब जन हिताय जाओ !
कवि गीत प्रीति गाओ !! ॥३३॥

पुस्तक-विवरण

(क) 'सत्य के प्रयोग'
—बापू

(ख) 'चम्पारन और नील के धब्बे'
—विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त

(ग) **Mahatma Gandhi– 8 Volumes**
—Shri Tendulkar

(घ) **The New Dimensions of Peace**
—Chester Bowels

(ङ) **Society To-Day & To-morrow**

(च) अनेक पत्रिकाएँ—
—बापू के वचनामृत, प्रार्थना, प्रवचन, लेख, हरिजन ।

उद्धरणी

संकेत

'आत्मकथा' या 'सत्य के प्रयोग' :

१

"अहिंसा एक व्यापक वस्तु है। अहिंसा के पेट में ही अद्वैत भावना का भी समावेश है।"

२

"राजकुमार शुक्ल नाम के एक किसान चम्पारन में रहते थे। उन पर नील की खेती के सिलसिले में बड़ी बुरी बीती थी। वह दुःख उन्हें खल रहा था और उसी के फलस्वरूप सब के लिये इस नील के दाग को धो डालने का उत्साह पैदा हुआ था। जब मैं महासभा (१९१६) में लखनऊ गया था, तब इस किसान ने मेरा पल्ला पकड़ा।

"मुक़दमा चला। लाट साहब के हुक्म से मुक़दमा उठा लिया गया है। चिट्ठी मिली कि जो कुछ जाँच करना चाहें, शौक से करें और उसमें जो कुछ मदद सरकारी कर्मचारियों की ओर से लेना चाहें, लें।"....

"सारे भारतवर्ष को सत्याग्रह का अथवा कानून के सविनय भंग का पहला स्थानिक पदार्थ-पाठ मिला।"

३

"यह मेरे सामने धीरे-धीरे अनुभव सिद्ध होता गया। यह ज्ञान मुझे शास्त्रों द्वारा न हुआ था।"

"ईसा मसीह ही एकमात्र ईश्वर का पुत्र है, जो उसको मानता है उसी का उद्धार होता है, मुझे न पटी। ईश्वर के यदि कोई पुत्र हो सकता है तो फिर हम सब उसके पुत्र हैं। ईसा मसीह यदि ईश्वर-सम हैं, ईश्वर ही हैं, तो मनुष्य मात्र ईश्वर-सम हैं। ईश्वर हो सकते हैं।"

"वेद यदि ईश्वर-प्रणीत है, तो फिर कुरान और बाइबिल क्यों नहीं।"

"अस्पृश्यता यदि हिन्दू-धर्म का अंग हो तो वह मुझे सड़ा हुआ अथवा बढ़ा हुआ मालूम हुआ।"

"टालस्टाय की 'वैकुण्ठ तुम्हारे हृदय में है' नामक पुस्तक ने मुझे मुग्ध कर लिया।"

"या तो मुझे अपने हकों के लिए लड़ना चाहिए या वापिस लौट जाना चाहिए। मुझ पर जो कुछ बीत रही है वह तो ऊपरी चोट है—वह तो भीतर के महारोग का एक बाह्य लक्षण है। यह महारोग है रंग-द्वेष।"

"मैं पाप के परिणाम से मुक्ति नहीं चाहता, मैं तो पल-प्रवृत्ति से, पाप-कर्म से मुक्ति चाहता हूँ।"

"मैंने सच्ची वकालत करना सीखा। मनुष्य के गुण—उज्ज्वल पक्ष को खोजना सीखा। मनुष्य के हृदय में प्रवेश करना सीखा।"

"सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते हुए दिखाई देते हैं।"

"प्रचार मैं एक ही तरह से करना चाहता हूँ—आचार के द्वारा।"

"रस्किन-रचित 'अन्टु दिस लास्ट' में मेरे अन्तस्तल में बसी हुई चीज का स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा.....सर्वोदय.....सब के भले में अपना भला।"

"पशु स्वभावतः निरंकुश है, परन्तु मनुष्यत्व इसी बात में है कि वह स्वेच्छा से अपने को अंकुश में रक्खे।"

४

"सत्यमय बनने के लिये अहिंसा ही एक राजमार्ग है।"

"व्यापक सत्यनारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिये प्राणी-मात्र के प्रति आत्मवत्, अपने समान, प्रेम की भारी जरूरत है। इस सत्य को पाने की इच्छा करने वाला मनुष्य जीवन के एक भी क्षेत्र से हर नहीं रह सकता। यही कारण है कि मेरी सत्य-पूजा मुझे राजनैतिक क्षेत्र में घसीट ले गई।.. .. जीवन-पथ के सारे क्षेत्रों में शुद्धि की जरूरत रहती है। लेकिन शुद्धि का यह मार्ग विकट है। शुद्धि होने का मतलब तो मन से, वचन से और काया से निर्विकार होना, राग-द्वेष आदि से रहित होना है। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है।"

"हम दम्पती के प्रेम में अभी विषय का अंश तो था ही। एक साल के बाद तो हम मिलेंगे ही कहकर और दिलासा देकर मैंने राजकोट छोड़ा।"

"हम तो हबशी-औरतों के मुहल्लों में जा पहुँचे। एक दलाल हमें वहाँ ले गया। तीनों एक-एक कमरे में दाखिल हुए। पर मैं तो शर्म का मारा कमरे में घुसा बैठा ही रहा। उस बेचारी बाई के मन में क्या-क्या विचार आये होंगे, यह तो नहीं जानता। थोड़ी देर में कप्तान ने आवाज लगाई। मैं तो जैसा अन्दर घुसा था, वैसा ही शायद बाहर आ गया।.....मैंने ईश्वर का उपकार माना कि इस बहन को देखकर मेरे मन में किसी प्रकार का विकार तक उत्पन्न न हुआ। मुझे अपनी इस कमजोरी पर बड़ी ग्लानि हुई कि मैं कमरे में प्रवेश करने से इनकार करने का साहस क्यों न कर सका।"

"आज से जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।..... कठिनाइयों का अनुभव तो मैं आज तक करता हूँ।"

"हिन्दुस्तान में हम उन लोगों को जो सबसे बड़ी समाज-सेवा करते हैं, भंगी मेहतर, ढ़ेढ़ आदि कहते हैं और उन्हें अछूत मानकर उनके मकान गाँव के बाहर बनवाते हैं। उनके निवास-स्थान को भंगी-टोला कहते हैं और उसका नाम लेते ही हमें घिन आने लगती है। इसी तरह ईसाइयों के यूरप में एक ज़माना था जब यहूदी लोग अछूत माने जाते थे और उनके लिये जो अलग मुहल्ला बसाया जाता था उसे 'घेटो' कहते थे। यह नाम अमंगल समझा जाता था। इसी प्रकार से दक्षिण अफ्रिका में हिन्दुस्तानी लोग वहाँ के भंगी–अस्पृश्य बन गये।"

"चम्पारन और नील के धब्बे"

लेखक : विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त, चम्पारन-वासी।

"निलही कोठे के गोरे साहबों की तूती बोल रही थी।...ऐसे दुर्दिन में 'मुरली मरवहा' नामक एक ग्राम में छोटी-सी चिन-गारी फूटी।...अधीनस्थ गाँवों के निवासी—खरीदे हुए गुलाम थे।. उनके पसीनों पर ही नहीं, उनकी बहू-बेटियों के सतीत्व पर भी उनका जन्मसिद्ध अधिकार था।

चम्पारन के राजों से ठीका लेकर अँग्रेज जमींदार बन बैठे थे। उन अँग्रेज ठेकेदारों की संख्या ९३ थी, किन्तु उनमें निलहे ७० थे।

ग्वालों को दूध के लिए एक रुपया देना पड़ता। उसे कहते—'बादछपी'। प्रत्येक घड़े तेल के लिए तेलियों को एक रुपया देना पड़ता। यह भी 'बादछपी' की करामात थी। साहब को घाव हो या कोई बीमारी, जो खर्च हो वह रैयत के सिर पर—वही।...मोटर घोड़ा, नाव और हाथी खरीदे जायें और उनके रखने में जो खर्च हो—उसे भी रैयत को देना पड़ता था— नवही, घोड़ही, हथियाही और मटरही।.. किसान अपने खर्च और परिश्रम से नदी में बाँध बनाकर सिंचाई करें जो—बाँध बेहरी" किसी का बाप मरे जो—'बपही-पुतही" लड़की का

विवाह करे तो केवल १।।) ...'मँडवच' ......कोई विधवा विवाह करे तो पाँच रुपया...'सगहरा' ...हल्दी उबालने वाले चूल्हे के लिए, प्रति चूल्हा एक रुपया...'चुल्हीयावन' ...ईख पेरने के हिसाब से...कोल्हुआवन...कोई अनाज बेंचे...बेंचाई...जो बेगार करने में असमर्थ था—उसे तीन रुपये—बेठमाफी...इसके अतिरिक्त तहरीर, फरकाती, रसीदा मान, हिसाबाना, दिवानी, महापात्री, राजअंश, फगुअही, दावातपूजा, रामनवमी, दसहरा आदि।

एक रात, उन्होंने (राज कुमार शुक्ल ने) सत्तू (चना-भस्म) की पोटली बगल में दबा कर, लोटा-डोरी पीठ पर लटका कर और कम्बल ओढ़ कर प्रस्थान किया...........

दिसम्बर १९१६ ई० में राजकुमार शुक्ल काँग्रेस के अधिवेशन के समय लखनऊ पहुँचे। वहाँ देश के कोने-कोने से प्रतिनिधि और दर्शक आये थे। वहाँ सभी नेताओं में तिलक जी का प्रभाव अधिक था। राजकुमार शुक्ल ने उनसे मिलकर, चम्पारण के किसानों के दुख दूर करने के लिये प्रार्थना की। तिलक जी ने यह कह कर टाल दिया—"अभी हमारे सामने देश की राजनीतिक स्वतंत्रता का प्रश्न है।" उसके पश्चात् शुक्ल जी ने मालवीय जी से विनम्र अनुरोध किया। मालवीय जी ने भी वही समस्या सामने रखकर, पीछा छुड़ाया। उस दिन गांधी जी को अपने राजनीतिक गुरु गोखले की मृत्यु का संवाद मिला था। उनके मन पर उस दुखद घटना का प्रभाव था किन्तु राजकुमार शुक्ल के निश्चल आग्रह के कारण उन्हें 'चम्पारण की दुर्दशा' सुननी पड़ी।"

"पटने से राजकुमार शुक्ल के साथ बापू १ बजे रात को मुजफ़्फरपुर स्टेशन पहुँचे। वहाँ कृपलानी जी कुछ विद्यार्थियों के साथ स्वागतार्थ उपस्थित थे। कहते हैं, राजकुमार शुक्ल ने सर्वप्रथम उसी समय बापू को 'महात्मा गांधी जी' कहा।"

राजकुमार शुक्ल की डायरीः

रविवार ता० ८ अप्रैल सन् १९१७ ई०

वैशाख कृ० १ संवत् १९७४

मो० कलकत्ता—बोरल साथ

महात्मा गांधी जी के.................

बापू के वचनामृतः

शांति बाहर की किसी चीज से नहीं मिलती। वह अपने अंदर की चीज है।

●

दिल को साफ कर लो। उसमें शैतान को नहीं, खुदा को विराजमान करो। ऐसा करोगे तो जन्नत यहीं है।

●●

कोई बाहरी ताकत इन्सान को नीचे नहीं गिरा सकती। इन्सान को गिरानेवाला इन्सान खुद ही है।

●●●

केवल सत्य ही असत्य को, प्रेम क्रोध को, आत्म-पीड़न हिंसा को शांत करते हैं।

●●●●

आध्यात्मिक शिक्षण का अर्थ है हृदय की शिक्षा।

●●●●●

आजादी का मतलब होना चाहिए लोकराज।

SOCIETY TO DAY AND TOMORROW

(Readings in Social Science)

Edited by

Elgin F. Hunt and Jules Karlin

The earth is the very quintessence of the human condition, and earthly nature, for all we know, may be unique in the universe in providing human beings with a habitat in which they can move and breathe without effort and without artifice. The human artifice of the world separates human existence from all mere animal environment, but life itself is outside this artificial world, and through life man remains related to all other living organisms. For some time now, a great many scientific endeavours have been directed toward making life also "artificial", toward c...ting the lost tie through which even man belongs among the children of nature. It is the same desire to escape from imprisonment to the earth that is manifest in the attempt to create life in the test tube, in the desire to mix "frozen germ plasm

from people of demonstrated ability under the microscope to produce superior human beings" and to "alter their size, shape and functions's; and the wish to escape the human condition also underlies the hope to extend man's life-span far beyond the hundred-year limit.

"This future man, whom the scientists tell us, they will produce in no more than a hundred years, seems to be possessed by a rebellion against human existence as it has been given a free gift from nowhere (secularly speaking), which he wishes to exchange, as it were, for something he has made himself. There is no reason to doubt our abilities to accomplish such an exchange, just as there is no reason to doubt our present ability to destroy all organic life on earth. The question is only whether we wish to use our new scientific and technical knowledge in this direction.

"The modern age is not the same as the modern world. Scientifically, the modern age which began in the seventeenth century came to an end at the beginning of the twentieth century; politically, the modern world, in which we live today, was born with the first atomic explosions."

—*Hannah Arendt*

Prologue to "The Shape of the Future"

"We can draw now the bony skeleton of any industrial society in the year, 2000. It may be a world society or a city State; it may live in a settled peace or still under the threat of war; it may be democratic or totalitarian. Whatever it is, I beleive that life in it will have certain large features. We cannot escape the large bony features : atomic energy, biological control, automation. But the body of society is not all bone; a good many different bodies clothe that skeleton.

—*J. Bronowski*

Planning for the year 2,000. I bid—"Nor given the prevalence of physical poverty in the backward nations and of phychological poverty in all nations, is the pre-eminence of materialistic drives and goals to be wondered at. In sum, today as in the past, the half educated, half emancipated state of human society assures that there will be along continuation of the violence, the instability, the blatant injustice, which are the most grievous aspects of the human tragedy. This is the true heritage of the human condition, and its bitter tragedy.

"To arise these dark thoughts is not to sermonize that man is "wicked" or to avoid the

conclusion that some men are much more guilty than others. Neither is it to maintain that there is no hope for a betterment of the human condition. On the contrary, there is today a greater long-term prospect for such betterment than humanity has ever known before."

Robert L. Heibroner —The Heritage of The Human Condition

Mahatma (8 Volumes)
by
D. G. Tendulkar

The new dimensions of peace : Chester Bowles— Gandhi announced that on March 12, 1930, he would leave his ashram at Ahmadabad and march two hundred miles to the Seaat Dandi, where regardless of British law, he would make salt. Then, said Nehru, "Salt suddenly became a mysterious word, a word of power."

× × ×

In 1947, when the British decided to quit India, it was hard not to conclude that this little man weighing scarcely 110 pounds, armed only with a tall walking stick and the weapon of *Satyagraha*, was in large measure responsible. Nor was there any doubt that the friendship between India and Britain, on which a reconstituted Commonwealth was based, owed

much of its foundation to the weapons with which Gandhi had carried on the struggle.

Yet, despite this extraordinary success, Gandhi was far away from the scene of celebration on Independence Day, August 15, 1947, spending his time instead in fasting, spinning and in prayer. For him the partition of India, and the terrible fratricidal riots which succeeded it, had meant failure. "Vivisect me, but not India" he had cried.

On January 30, 1948, ten days after he had broken his fast, he was shot three times and killed while walking unguarded to his regular prayer meeing. Despite threats from fanatic Hindus, and a bomb thrown at him a few days before, he had refused police protection. ..... when Gandhi's ashes were emptied seaward into the Ganges, more than four million people were gathered there on the river bank. Some say more human beings assembled on that day than on any other occasion in history. The king's representative in the United Nations, in mourning the death of "the friend of the poorest and the loneliest and the lost", predicted that Gandhi's "greatest achievements...are still to come." General Mac Arthur, then the Supreme Allied Military Commander in Japan said, "In the

evolution of civilisation, if it is to survive, all men cannot fail eventually to adopt Gandhi's belief that the process of mass application of force to resolve contentious issues is fundamentally not only wrong but contains within itself the germs of self-destruction.

It may be argued that Gandhi exercised power more successfully, with more lasting effects, than any of his revolutionary contemporaries. Did he not stake out the best and most complete revolution the twentieth century had seen ? Was it too much to hope that in the age of the hydrogen bomb, Gandhi's revolution might become the model for the remaining revolutions in the century ?"

टिप्पणियाँ

शीर्षक :–"एकोऽहम् द्वितीयो, नान्ति वाली सत्ता अथवा स्वान्तः सुखाय वाली स्थापना का विकास हुआ बहुजन हिताय" में, वह भी अनेक संघर्षों तथा सदियों के पश्चात् । यह प्रत्येक दिशा में द्रष्टव्य रहा : सत्ता, समाज, साहित्य , कला , तंत्र । अब इसकी भी मान्यताएँ गौण होती जा रही हैं । बापू की सदी में , बीसवीं सदी में, विशेषतः सन १९४५ ई० से, "सबजन हिताय" सर्वोपरि रहा है, मंच पर, साहित्य में, इसलिये बँटी हुई इकाइयों में अभिव्यंजना अब फबती नहीं । किंचित् हजार वर्षों की संकटजन्य परंतु मानवीय उलझनों का यह निदान है, या कहें, एक चरमोत्कर्ष प्राप्त हो गया है; जिस प्रकार "भगवद्गीता" में एक संस्कृति, विश्वव्यापिनी भावना भी, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, ऐहिक, पारलौकिक दृष्टिकोणों का चरमोत्कर्ष हुआ था। मेरे विचार में समस्त मानव-विकास के ये ही तीन चरण हैं : एक जन से बहुजन, बहुजन से सबजन। इसलिये, सबजन हिताय बोल पाने लगा है, यत्र-तत्र ही नहीं, सर्वत्र । भविष्य में इससे भी अधिक कल्याणकारी कौन-सा डग मनुष्य लेगा, कहा नहीं जा सकता, सोचा तक भी नहीं ।

कुटी : साबरमती आश्रम ।

रवि के सपने : १५ अगस्त, १९४७।

खेतों-आड़ों पर चलते : नोआखली, कलकत्ता, बिहार के साम्प्रदायिक उपद्रवों में बापू ने घूम-घूमकर शांति स्थापित की थी। एक स्थान पर लेखक भी साथ में था।

जमघट में : १५ अगस्त, १९४७ के दिन बापू कलकत्ता में थे, चौबीस घंटों के उपवास, चर्खा चालन तथा प्रार्थना-सभा में संलग्न थे, न कि राजधानी में सत्ता से शृंगार कर रहे थे। कर्त्तव्य, न कि अभिषेक, लक्ष्य रहा था।

मानव-भक्षकों के दल : अनगिनत हमलों और आक्रमणों, भारत-इतिहास के ही नहीं, विश्व के भी, से संबंधित।

तानी नहीं भृकुटी : सुभद्रा कुमारी चौहान की "झांसी की रानी" के संदर्भ में।

वर्ष हजार ही समेटे : बहुजन हिताय की ओर उन्मुख हुए पश्चिम का इतिहास एक हजार से अधिक प्राचीन नहीं, "मैगनाकार्टा" को इसका प्रथम सोपान समझ लेने के बावजूद।

चम्पा की वनस्थली : नेपाल की सरहद पर अवस्थित चम्पारण अनेक अपूर्व ऐतिहासिक घटनाओं का स्थल रहा है : बुद्ध इसी ओर से ज्ञान की खोज में गये, ज्ञान-प्राप्त कर अंत में यहीं से विचरण कर महासमाधि में, बगल के कुशीनगर में, डूबे; महाराज अशोक की लौह-कीर्त्तियाँ यहीं ही अधिक संख्या में हैं आदि

इतिहास के आदिकवि वाल्मीकि का आश्रम कविता-कानन, यहीं था; जननी सीता मोतीहारी से कुछ दूर यहीं ठहरी थीं, कुण्ड, विश्रामागार के ध्वंस अभी भी द्रष्टव्य हैं, लव-कुश ने 'संग्रामपुर' में युद्ध किया था, भैंसालोटन, अब वाल्मीकिनगर में ही गज-ग्राह का युद्ध शुरू हुआ था और यहीं भारतवासियों को बापू ने सत्याग्रह का प्रथम, सफल प्रयोग सिद्ध कर दिखाया था।

बन्द द्वार पर यह पुकार : चंपारन में १९५८-६३ की अवधि में मुझे एक अधिकारी के रूप में रहने का सौभाग्य था। अनेक व्यक्तियों, बापू के समकालीन व्यक्तियों से भी मिलने तथा उनके साथ जीवन के कुछ क्षण बिताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तदुपरांत ही बहुत-सी अप्रकाशित कथाओं में एक यह विलक्षण है, एक दृष्टांत, अहिंसक के बल, पराक्रम का, जो इस प्रकरण में उल्लिखित है। तत्कालीन जिलाधिकारी श्री वैद्यनाथन् ने भी इस पर प्रकाश डाला था।

निर्बल होता है हिंसक : बापू के शब्द, आत्मकथा में।

'निरंकुश अंकुश' : " "

'महारोग' : "आत्मकथा" या "सत्य के प्रयोग" से उद्धृत।

'दृश्य विकट' : चौरा चौरी नामक स्थान में जब अहिंसा ने हिंसा का रूप ले लिया, लोगों की निराशा के बावजूद आंदोलन को स्थगित कर दिया था बापू ने।

'जनता, सत्ता" : इस पहलू पर मार्क्स, लेनिन के बड़े ही चिंतन हुए हैं, इस दिशा में असली पहलू की परख बापू-दर्शन में करें।

"लता, सत्ता" का यह प्रतीक प्रिया इन्दु सिन्हा का है, उनकी ही एक सशक्त कविता का यह प्रतीक है जो उस कविता को पूर्णतः जकड़कर रखता है और प्रभविष्णु बनाता है। उसका अंश इस प्रकार है :—

"सामने मेरे सामने
एक पेड़ है
मोटा अति मोटा
लदा हुआ पत्तों से
अपनी मोटाई से आप ही
वह सुस्त है।
और ढँका है मोटापन जिसका
एक नये क्रीपर से
नाम है मनीप्लांट
हाथी के कान-सा बड़ा-बड़ा पत्ता
आंतक है पौधों में
हरी-हरी घास में।
भीतर अति खोखला
भीतर ही भीतर है
भादों की वृष्टि से धराशायी हो
गाछ ढह जायेगा
लुप्त होगी सत्ता।"

मेरी यह स्थापना है कि अब तक जनता और सत्ता के बीच की खाई राजनीति और इसके नाम आने

वाले अनेक वादों की भ्रांति है, जिसका पोषण जान-बूझ कर किया जाता है। जनता और सत्ता अलग नहीं, दोनों के क्षेत्र निर्धारित हैं, उत्तरदायित्व भी। जनता त्याग का राग लगाती है, परन्तु त्याग का भाग अदा नहीं करती।

ज्ञान-ज्योति बुझ गई : जवाहरलाल नेहरू के शोकोद्गार के रूप में आये हुए प्रतीक, जिसने आकाशवाणी पर इसे सुना, उसने दर्द ऐसा तीखा अनुभव किया कि कहा नहीं जा सकता।

ज्ञान-ज्योति नहीं बुझी है : शोकोद्गार के मध्य में ही जवाहर-लाल नेहरू ने प्रतीक को पुनः आस्थापूर्ण कर डाला।

"मैं विनीत, वे पुनीत" : 'निराला के' "तुम और मैं"
"वे गिरिवर, मैं लघुतर" : ईश्वर : मनुष्य के सन्दर्भ में।"

"रसल" गिरा : यही नया पूजन है। बीसवीं सदी के अग्रगण्य चिन्तक बरट्रंड रसल, जिन्होंने केवल चिन्तन ही नहीं किये हैं अपितु इधर अणुअस्त्रों पर रोक-अभियान में क्षीण शरीर से भाग लिया है, समस्त विश्व की आशा को वाणी और रूप देकर। अक्तूबर सन् १९६५ ई० की घटना है। महात्मा गाँधी हाल। लन्दन में श्री बरट्रंड रसल ने श्रमदल की सदस्यता छोड़ दी, प्रमाणपत्र फाड़ डाला, कहा इस पार्टी ने सत्ताशीन होने के बाद मानव-कल्याण का घोषित लक्ष्य पूरा नहीं किया और यह भी कहा कि नये दल की जरूरत है।

"जर्जर, हत" : "**प्राथमिकी**" की वन्दना का अंश, जो

जर्जर हत में शक्ति भरें, जो
विचलित की आसक्ति हरें, जो
तप से संचय अमृत करें जो
उनका सुरभित फूल बने ! !
चरण-धूल स्वर-मूल बने !

"जन के अनुरागी" : गोस्वामी तुलसीदास के श्रीरामचन्द्र की अवतारणा के प्रति उद्‌गार, एक ऐसी विशिष्ट कल्पना, "जन" शब्द पर आधारित मार्क्स, लेनिन की मान्यताओं या समाजवाद, जनतन्त्र, या साहित्य में जनवाद की पृष्ठभूमि में जो कल्पना सजग जागरूक, पारखी कवि, वह किसी भी देश के हों, के द्वारा ही आकार लेती है :

"भये प्रकट कृपाला दीनदयाला
कौसल्या हितकारी
हरषित महतारी मुनि मनहारी
अद्‌भुत रूप निहारी
करुणा सुख सागर सब गुन आगर
जेहि गाँवही श्रुति संता
सो मन हितलागी जन अनुरागी
भइउ प्रगट श्रीकंता ।"

यह संस्था : यूनाइटेड नेशन्स, जो सबजन हिताय की अनेक कल्पनाओं को कार्यान्वित कर रहा है, पंच

परमेश्वर, अन्याय-नाशक, द्रव्य, स्वास्थ्य, विद्यादायक यह है ।

"ले चल" : प्रसाद के 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे' के संदर्भ में यह "ले चल" नवोत्थान है, नव जागरण है ।

"यह समता परिपाटी" : बापू के पश्चात् अनेक प्रकार के स्वेच्छादानों से नव-निर्मित समाज की अवतारणा की दिशा में भूदान, गोदान, ग्राम-दा सच्ची समता के चिह्न हैं, जिसे जयप्रकाश, विनोबा, कालेलकर, निष्काम कार्यान्वित कर रहे हैं ।

आदिम : आदम या मनु जो हों, ज्ञात मानवेतिहास में, पैगम्बरों और अवतारों को छोड़ दें, पंचतत्त्वों से बने मानवों का सच्चा, पहला असली नमूना मोहनदास गाँधी ही थे, एक मानव में कितनी शक्तियाँ हैं, वह मानव मिट्टी से ही रचित क्यों न हो, यह अब, एक प्रकार से विश्व में प्रथम बार, द्रष्टव्य हुआ । स्वर्ग, देव को छोड़ें, अपनी इकाई में ही विराटता अनुभव करें । "फूटे सलिल इस धरा से : छूटे गान बे-सुरा से" ।

इस काव्य की व्याख्या

लिखते-लिखते, सुनते-सुनते, देखते-देखते यह क्या बन आया? महाकाव्य !

कभी सोचा भी नहीं था, कविता लिखूँगा; मौलिक स्रष्टाओं का तो मैं एक "कायल आलोचक" ठहरा। जो होता है, अच्छा ही के लिये होता है। इस विश्वास, जनश्रुति, जनकहावत पर भरोसा रख लेता हूँ।

१९४४ ई० में "कौन कुटी में जाग रहा", (प्रथम १–६). "चारों ओर तिमिर का घेरा" गीत (तृतीय १–३) किंचित् १९४७ ई० में ही लिखे अपूर्ण गीत "सन्य हुए कवि के सपने" (प्रथम १–९) तथा १९४४ ई० में लिखित अप्रकाशित भाई के प्रति के कुछ वैयक्तिक परन्तु अब इस महासागर में घुलकर विशिष्ट, अंश को सन् १९६५ ई० में देखा; प्रेरणा ११-९-६५ को उठी और ९-१०-६५ को मुखर कर शांत हो गई :

कविता लौट गई मधुवन में
सुधि केवल इसकी अब मन में ।।

भविष्य में काव्य लिखूंगा ? विस्फोट हो गया है ?

प्रेरणा के उद्भव का एक प्रसंग है। परिचित कवियों से अनुनय करता रहा था, बापू के ऊपर महाकाव्य लिखें, बापू

कि विविष्ट देन, लौकिकता को काव्य में उतारें परन्तु देखे, सुने, पहचाने मानव मनुष्य को बौना लगते हैं। होश आने के साथ-साथ ही जो कुछ देखा था, परखा था, दर्शन, साहित्य, इतिहास, समाज-शास्त्र, धर्मग्रन्थ, या राजसत्ता के अध्ययन, प्रणयन से जान पाया था, वे सब घनीभूत हो गये हैं और इस सच्चे आदिम में एकाकार हैं।

यह काव्य है, कौन-सा, कथा, खण्ड या प्रबन्ध या महा, अभी मैं नहीं कहूँगा। युगीन व्यक्तियों की परख के पश्चात् ही यह कहा भी जा सकता है। ईमानदारी रखी गई है सर्वत्र, बापू के दर्शन में कुछ अनर्गल जुट न जाये, बापू की प्राणधारा में विकार न आ जाये, सहिष्णुता, संवेदना का हनन न हो जाये, राष्ट्रतत्व के एक अंग, स्वदेश-प्रेम के गायन में विराट जन-समुदाय, विश्व अन्तर्द्धान न हो जाये।

विधान : इसका विधान खोज एवं अन्वेषण के अनुसार है। महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य में द्वन्द्व के निदान से ही रचना निखरती है, आरम्भ में ही नायक ज्ञानी होता है, पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ व्यक्ति जिसकी छवि कवि उतारता है। इसमें नाटकीय द्वन्द्व नहीं होता; इसलिए, १५ अगस्त, १९४७ के संदर्भ में नायक आये हैं; फिर सत्याग्रह, अहिंसा, यौनशमन, हरिजन-प्रतिष्ठा, एक से लाख करोड़ लोगों में स्पंदन, या इनके संस्करण; उसका चिन्तन, सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक तथा शहादत का जान-बूझकर गायन हुआ है। बापू के देहावसान बाद बापू की बहुत-सी झाँकियाँ भी आई हैं। इन झाँकियों में ही मानव के भविष्य की रक्षा है, मानव के कल्याण

की संभावना है। महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य में संस्कृत-आचार्यों वाली सोद्देश्यता अनिवार्य है, जिसे कोरे संदेश, खरे उपदेश का पर्याय न मानें। यह आस्था के निकट ही होती है। इसलिए, बापू की अवतारणा साधना और आराधना का रूप ले सकी है।

रसों में वीर, करुण, कुछ हद तक शृंगार, शांत प्रधान हैं।

कथा की बहुत-सी घटनाएँ सांकेतिक ही हैं। इनका विस्तार संभव था, परन्तु यह बापू के प्रति कुछ अन्याय-सा होता, उस मानव ने सब कुछ झेला इसलिये कि लोग सुखी, ज्ञानी, सह-प्रेमी, संयत हों, न कि इसके व्यक्तित्व का कोरा प्रचार हो। आत्मकथा न कहकर "सत्य के प्रयोग" कहने वाले नायक की इस अन्तश्चेतना को निभाना मेरा परम धर्म था। इसलिये, अनेक घटनाओं के बिन्दु ही हैं, सागर नहीं, पर इन बिन्दुओं से चतुर्दिकी रश्मियाँ, ज्ञान की, फैलती हैं। यह इसकी सीमा है, अवश्य, परन्तु यह इसकी आधार-शिला भी है।

शैली : शैली के सम्बन्ध में सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि चूँकि मैं रोजनामचाई कवि नहीं हूँ, इसलिये मेरी वाणी में मजी हुई कलम न हो सकती है। परन्तु मात्रा, पाद, छन्द-विन्यास का शास्त्रीय ध्यान और पालन मैंने किया है। बहुत-सी पंक्तियों में इस बीसवीं सदी के हिन्दी कवियों के प्रभाव स्वभावतः आये हैं। लेकिन न बोल, न शब्द, बिना उद्धरण के, संकेत के लिये गये हैं। इसलिये, यह अनुकृति नहीं, किसी की रचना का आभास नहीं। शब्द जैसे आये, रक्खे गये, तुक, लय, मात्रा की सुविधा के लिये नहीं,

व्यक्तीकरण के स्पष्टीकरण के लिये, भावना के कलरव के लिये। आलोचक विनयनित होता है। मैं आलोचक हूँ, इसलिये इतने उर्वर काव्य में सचेत रहा हूँ।

प्रतीक एक है रवि का, दूसरा ज्वाला का। बस। अधिक कहना बकवास तुल्य होगा। आत्म-प्रचार। इस काव्य के प्रतिकूल ! जय मानव ! जय विश्ववाणी !!

———

व्याख्या

महाकाव्य की

सर्गों में बाँटकर पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा के कलरव से या युगीन चेतनाओं की कोरी तुकबन्दी से महाकाव्य नहीं बन जाता है।

व्यक्तीकरण ओजपूर्ण हों, धीर, उदात्त, प्रतिष्ठित, ऐतिहासिक नायक हों, सर्वऋतु वर्णित हों, वीर या शृंगार-रस प्रधान हों, सर्गों में विभक्त हो, उद्देश्यपूर्ण हो, ये गुण हमारे शास्त्रज्ञों ने महाकाव्य-निमित्त बतलाये हैं। पर बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। महाकाव्य की अवतारणा—सर्वथा एक अद्भुत, विलक्षण और संपन्न घटना होती है। संपन्न इसलिये कि कवि की, उसके युग, दृष्टिकोण, दर्शन, अनुभूति, संस्कृति, कभी-कभी उसके धर्म की भी, उसके आदर्शों और शैली की यह रचना पराकाष्ठा, परिणति एवं प्रतिष्ठा होती है। किंचित्, इसलिये महाकाव्य लिखकर रचनाकार बहुधा विराम ले लेते हैं, कभी-कभी तो जीवन से ही निवृत हो जाते या परम संतुष्टि, या कहें अपनी साधना का पूर्ण स्खलन पाकर शांत हो जाते हैं। हिन्दी में 'प्रसाद' के साथ भी यही बात हुई। विदेशी साहित्यों की बातें करें तो जान पड़ेगा कि दाँते ने अपनी—"डिवाइन कामेडिया" में या मिल्टन ने "पैराडाइज लॉस्ट" में या—वर्जिल ने 'एनिड' में, वाल्मीकि ने 'रामायण'

में, तुलसी ने "रामचरित मानस", में अपना और युग का, अपनी आस्था और अपने प्रतिमान का, अपने प्राप्त और प्राप्य का, अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता का सारा आत्मसात, अनुभूत, अर्जित, पूर्व परिचित, सार उड़ेल दिया। यह आवश्यक नहीं कि इनकी स्थापनाओं से मानववृन्द राग जोड़ ले, पर इतना आवश्यक है कि इनमें सामयिक तथा युगीन, चिरन्तन तथा चिरकालीन मानवीय चेतनाओं के ऐसे आरोपन होते हैं कि संबंधित युग ही नहीं बाद की पीढ़ियाँ भी प्रतिच्छाया देखती रहती हैं। वाल्मीकि की रामायण में, या तुलसी के मानस में आर्य संस्कृति और मध्यकालीन हिन्दू-संस्कृति की सारी छवियाँ अंकित हैं, साथ ही मानव के दुर्बल और सबल पक्षों का शाश्वत निरूपण भी। मिल्टन की अमर रचना में तत्कालीन 'प्रोटेस्टेन्ट' आन्दोलन की सारी धाराएँ समाविष्ट हैं, साथ ही, मनुष्य की दुर्बलताएँ, या उसके मनश्ताप, फिर उन्हें विजित तथा सुन्दर में परिणत करने की आकांक्षाएँ, जिनका स्वर्णिम, अभिराम आरोपन मिल्टन ने "पैराडाइज रीगेन्ड" में किया तो अवश्य परन्तु जो पूर्व कृति की शक्ति से वंचित ही रहा। दाँते ने अपनी प्रियतमा की छवि ही नहीं देखी वरन् इतिहास के सभी क्षेत्रों के नायकों के आलोड़न-पीड़न तथा घटनाओं के चढ़ाव—उतराव को दखा ।

पहले महाकाव्य वही करता था जो आज कोई बड़ा उपन्यास करता है, अर्थात मानव-समुदाय, काल को अपने में समेट लेता है।

"न कथावस्तु में न इसके विभाजन में महाकाव्य का निजस्व होता है। इसका कौतुक, निजस्व है इसके कलरव में, युग, चिरकाल, संस्कृति, धर्म, सभ्यता, दर्शन, दृष्टिकोण, समाज-चेतना के उदात्त—आरोपन में, प्रतिनिधित्व में"

लेखक की "आज तक की" से

काव्य की नामावली

मनु—	आदि पुरुष, शास्त्रज्ञ, विधिकार।
आदिम—	आदि पुरुष, बाइबिल, मिल्टन की कृतियों में चित्रित।
ईव—	आदिम की सहेली।
राम—	हिन्दू जाति के परम आराध्य, अवतार, ईश्वर के पर्याय।
जानकी—	श्री राम की स्त्री, सीताजी।
लव-कुश—	श्री राम के दो पुत्र।
वाल्मीकि—	"रामायण" के प्रणेता। आदि कवि।
रावण—	लंकाधीश, दशानन, जिन्हें श्रीराम ने वध किया।
मेनका—	देव-लोक की अप्सरा, जिन्होंने ऋषि विश्वामित्र की समाधि भंग की थी।
कृष्ण—	महाभारत के नायक, भगवद्गीता के ज्ञानदायक।
कौरव—	महाभारत के एक दल के सामूहिक नाम।
सुकरात—	यूनानी महापुरुष, जिन्हें विष दिया गया था, चूँकि ज्ञान की चर्चा करते थे।

हेलेन— ट्राय की अपूर्व सुन्दरी जिनके ही कारण ट्राय समर हुआ था।

महाबीर— जैनों के आराध्य, तीर्थंकर, अवतार।

बुद्ध— भगवान् बुद्ध, जिन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की।

मेरी— ईसा मसीह की माता।

ईसा— ईसा मसीह।

चाणक्य— कौटिल्य के नाम से प्रसिद्ध, राजनीति, कूटनीति के व्याख्याता, "अर्थशास्त्र" के प्रणेता।

अशोक— सम्राट् अशोक, जिन्होंने कलिंग-विजय के उपरांत अपने को बुद्ध-पथ, प्रेम-शांति-पथ पर अग्रसर किया।

मुहम्मद— इस्लाम के पैगम्बर, प्रणेता।

कबीर— संत, कवि, एक धर्म-पंथ के संस्थापक।

नानक— संत, कवि, सिक्ख-पंथ के प्रणेता।

अकबर— सम्राट्-अकबर, जिन्होंने हिन्दू-मुसलिम धर्मावलंबियों के बीच सदभाव, प्रेम की धारा चलायी थी।

राणा प्रताप— चितौड़ के महाराणा, जिन्होंने तृण-धरा को ही संवारा तथा स्वतंत्रता लौटाने तक का यह व्रत लिया और निभाया।

मकयावेल— इटली का चिंतक जिसने "दी प्रींस" नामक ग्रन्थ में अपने उस प्रसिद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जिसके अनुरूप जिस तरह हो सत्ता हासिल होनी चाहिए।

रूसो— फ्रांस का क्रांतिकारी लेखक, फ्रांस की क्रांति का जन्मदाता।

नेपोलियन— फ्रांस की क्रांति का महानायक जो पीछे सम्राट् बना।

मार्क्स— जर्मनी का क्रांतिकारी विचारक, जिन्होंने मार्क्सवाद की अवतारणा की तथा समाज और राज्य की नई व्याख्या दी।

इब्सन— नाटककार।

डारवीन— समाज-चिंतक, जिन्होंने जीव-उत्पत्ति संबंध सर्वथा नया इतिहास प्रतिपादित किया।

रस्किन— लेखक, चिंतक।

फ्रायड— लेखक, मनोविज्ञान-शास्त्री, जिन्होंने यौन की चेतनाओं का रोमांचकारी विश्लेषण किया।

राजकुमार— चम्पारण का एक साधारण किसान जिनके अथक प्रयास के फलस्वरूप ही महात्मा गाँधी का सफल अभियान चम्पारण में हुआ।

तिलक— अखिल भारतीय कांग्रेस के नेता।

मालवीय— नेता, वाराणसी विश्वविद्यालय के संस्थापक।

गोखले— बापू के राजनैतिक गुरु एवं अग्रगण्य भारतीय नेता।

कस्तूरबा— बापू की धर्म-पत्नी।

मणि— समाज-सेविका, बापू की योजना को कार्यान्वित करने वाली।

दुर्गा— समाज-सेविका।

हिटलर— जर्मन राष्ट्र का सिरमौर, द्वितीय महायुद्ध का कारण।

मोहन— भारत के राष्ट्रपिता।

आभार

इस काव्य की पाण्डुलिपि देख जाने और अपने अमूल्य परामर्श देने के निमित्त प्रिया, कवयित्री इन्दु सिनहा, एम० ए०, डा० श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव, एम० ए० डी० लिट्, कविगण, श्री रामेश्वर 'झा' द्विजेन्द्र, एम० ए०, साहित्यालंकार, श्री गोस्वामी मदन गोपाल पाण्डेय 'अरविन्द', श्री उपेन्द्र नारायण चौधरी तथा कवि एवं आलोचक डा० बेचन को मेरा आभार है। पाण्डुलिपि के टंकन के निमित्त सहकर्मी श्री हरिहर प्रसाद को भी आभार प्रकट किया जाता है। और जिन विज्ञ, रस-मर्मज्ञ सज्जनों तथा देवियों ने इस काव्य को सुना और मेरा हौसला बुलन्द किया, उन्हें भी मेरा कोटिशः धन्यवाद है। प्रिय अनुजगण सच्चिदा, आई० ए० एस० एवं अरुण कुमार, प्राध्यापक को भी मेरा साधुवाद है। और श्री नरेश चंद जैनजी ने प्रकाशन के सारे भार अपने ऊपर लेकर हिंदी के एक सेवक का कितना बोझ हल्का किया, कहा नहीं जा सकता। उनका मैं ऋणी हूँ।

●